* श्रीमते रामानुजाय नमः *

श्रीरामानुजाब्द ९७७ अगस्त १९९३

अनन्त सन्देश

पुरुषोत्तममास के आराध्य
श्रीगोपालकृष्ण

卐

मासिक-प्रकाशन

卐

वर्ष—२२

अंक—३

श्रीवेंकटेश देवस्थान ८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई—२

* विषयानुक्रमणिका *

सम्पादक मण्डल

वार्षिक भेंट
भारत में २०)रु०
आजीवन २०१)रु०

कर्म हमारा जीवन है।
धर्म हमारा प्राण है॥

साधारण प्रति
भारत में
३-५०)रु०

❀ श्रीमते रामानुजाय नमः ❀

अनन्त सन्देश

मासिक प्रकाशन

अनन्ताचार्यवर्याणामनन्ताऽद्भुतभावदः जीयादनन्तसन्देशः सदनन्तप्रभावतः ।

ईशानां जगतोऽस्य वेङ्कटपतेर्विष्णोः परां प्रेयसीं, तद्वक्षःस्थलनित्यवासरसिकां तत्क्षान्तिसम्बर्धिनीम्
पद्मालंकृतपाणिपल्लवयुगां पद्मासनस्थां श्रियं, वात्सल्यादिगुणोज्ज्वलां भगवतीं वन्दे जगन्मातरम् ।।

वर्ष २२, सम्वत् २०५० भादों | श्रीधाम वृन्दावन | अगस्त १९९३ अङ्क–३

❋ श्रीकृष्णाय वयं नुमः ❋

कारुण्यामृतनिर्झरः सुरसरिज्जन्माकरः श्रीवधू-
लीलाब्जं व्रजकामिनीकुचतटीकस्तूरिका स्थासकः।
उत्तंसः सुरयोषितां मुनिमनोवश्यौषधीपल्लवो-
यस्याङ्घ्रिः सुरवल्लभः स जयति श्रीपुण्डरीकप्रियः ।।

यदङ्घ्रिरेणुबीजानि जनैरुप्तानि मूर्द्धसु ।
सद्यः सुरद्रुमायन्ते श्रीधरः स श्रियेऽस्तु वः।।

●★●

सम्पादकीय

श्रीकृष्ण जयन्ती का सन्देश

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने आज से लगभग ५२१९ वर्ष पूर्व भारतवर्ष के अन्तर्गत व्रजमण्डल मथुरापुरी में, कंस के कारागार स्थित परमसत्वाश्रय वसुदेव देवकी से अवतार धारण किया। श्रीकृष्ण वसुदेवपुत्र और देवकीनन्दन कहलाये। आपके पधारने से व्रजवसुन्धरा सार्थ नामवाली हो गयी। आपके विषय में स्मरण किया जाता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

जब जब धर्मका ह्रास, उस पर पावन्दी लगायी जाती है। अधर्म का बोलबाला चारों ओर बढ़ा जाता है, तब मैं स्वयं अवतार धारण करता हूं। अवतार का कार्य बताते हुये कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

मैं अवतार लेकर साधुजनों की रक्षा करने के लिये, दुष्टों का नाश, धर्म की स्थापना के लिए प्रत्येक युग में अवतार धारण करता हूं।

इससे यह भी ज्ञात होता है कि दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति का परस्पर संघर्ष टकराना चिरकाल से चलता चला आया है और अनन्तकाल तक यह संघर्ष चलता रहेगा। सज्जन लोग दैवी सम्पत्ति के पक्षधर होते हैं और दुष्ट प्रकृति के लोग आसुरी सम्पत्ति के पक्षपाती होते हैं। फिर असुरों से देव डरे क्यों? डटकर मुकाबला करना ही श्रेयस्कर होगा। इतना अवश्य है कि उस ईश्वर से प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, जैसे देवगण ने 'तीरं क्षीरपयोनिधेः' क्षीर सागर के तट पर प्रार्थना की थी। श्रीकृष्ण भी तो क्षीरार्णवशायी नारायण ही तो हैं—

एष नारायणः साक्षात् क्षीरार्णवनिकेतनः।
नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मथुरां पुरीम्॥

यह वचन वैष्णवों में प्रसिद्ध है। इससे और श्रीमद्भागवत से भी यही ज्ञात है—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदायुदायुधम्। श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरंसान्द्रपयोदसौभगम्॥ (भा० १०।३-९)

उस अद्भुत बालक के दर्शन वसुदेव-देवकी दम्पत्ति ने किये जो चतुर्भुज था, चारों भुजाओं शंख चक्र गदा पद्म धारण किये थे, वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिह्न था, गले में कौस्तुभमणि, गलेपर पीताम्बर शोभित था और उनका वर्ण नवीन जलधर (मेघ) के समान श्याम था। ऐसे देवदेव को देख दम्पति ने प्रार्थना की।

माता पिता की दशा देखकर भगवान् ने कहा— 'यदि कंसाद्बिभेमि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय' यदि आप कंस से भयभीत हैं तो मुझे गोकुल नन्दालय ले चलो। वसुदेवजी कृष्णजी को गोकुल ले गये। वहाँ उन्हें यशोदा के अङ्क में सुलाकर, कन्या को ले आये। नन्दालय में श्रीकृष्णजन्मके उपलक्ष में नन्दोत्सव मनने लगा। यहों से श्रीकृष्ण की दिव्यबाल्य लीलाओं का प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम पूतना को मातृगति प्रदान की। सात वर्ष की अवस्था में गोवर्धन धारण कर कर्म का वैष्णव परक उपदेश किया और अपने सम्पूर्ण बल का खेल दिखाकर सबको आश्चर्य चकित किया 'क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्' कहाँ सात वर्ष का बालक कृष्ण और कहाँ सातकोस का महान् गिरिराज पर्वत का धारण। श्रीकृष्ण ने कंस का वध करके ग्यारह वर्ष की किशोरावस्था में व्रज को छोड़ आगे का कर्मक्षेत्र देखा।

उनका धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में अर्जुन को गीता का उपदेश बड़ा मार्मिक हुआ। गीता जैसा ग्रन्थ विश्व में वेजोड़ है, उसकी समता न कुरान, न वाइविल न अन्य कोई अन्य ग्रन्थ आजतक कर सका है न आगे भी कर सकेगा, यह गीताशास्त्र सम्पूर्णवेद, उपनिषद् शास्त्रों को मन्थन कर निकाला नवनीत है। इसके हृदयंगम करने से मानव-मानवता की चरमोपलब्धि कर सकता है। इसमें प्रकृति का जीवात्मा का और परमात्मा का सम्पूर्ण अथ से इति तक रहस्योद्घाटन किया गया है। इसमें कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति को सरल शब्दों में बताया गया है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू माते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

हे जीव! तेरा कर्म करने में ही अधिकार है। उसके फल में नहीं। कर्म के फल का हेतु (कारण) भी तू मत बने और जो निषिद्ध कर्म हैं उनमें भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। जीव बोला—इससे अच्छा है कि मैं कर्म करूँ ही नहीं, उत्तर मिला 'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्॥' तू एक क्षण भी कर्म रहित नहीं रह सकता है, कभी भी। तब क्या, कैसे करूँ। फल की अभिलाषा रहित केवल शास्त्र विहित कर्म कर। ठीक है, वैसा करने पर भी शुभाशुभ कर्म बन ही जाते हैं। फिर कर्म के जाल से कैसे बचा जाय। उत्तर मिला—जैसे धान को भून देनेपर उसमें अंकुर पैदा करने की शक्ति नहीं रहती वैसे ही कर्म को ज्ञान रूपी अग्नि से भून दो, तब उसमें कर्मांकुर पैदा करने की शक्ति नहीं रहेगी। वह ज्ञान क्या है प्रभो! उत्तर मिला प्रकृति-पुरुषका विवेकज्ञान। प्रकृति जड़ है जीवात्मा चेतन है चिरकाल रहने वाला है। अणुरूप सूक्ष्म है, उसे अस्त्र, जल, शस्त्र, अग्नि कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। वह ईश्वर का अंश है, निर्मल है।

जीवात्मा के सान्निध्य से प्रकृति में कार्य करने की शक्ति आती है। प्रकृति से बने शरीर, इन्द्रियों आदि से सम्पूर्ण सत् कर्म करो—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

हे अर्जुन! जो कुछ भी करो, जो यज्ञादि में हवन करो, जो तपस्या करो, वह सब मेरे (ईश्वर के) अर्पण कर दो। परमात्मा की वस्तु परमात्मा को अर्पण करने से कर्ता को कोई दोष नहीं, अपितु जो कुछ कमीवेशी रह गयी हो वह भी पूर्ण हो जायगी। इस ज्ञान को श्रद्धा=अपने से बड़ों में आदरभाव वाला प्राप्त करता है। अथवा जिसकी इन्द्रियाँ संयत हैं। वश में हैं। वह शान्ति को प्राप्त करता है। भक्ति=शुद्ध-विशुद्ध भाव से ईश्वराधन ही तो भक्ति है। सम्पूर्ण विश्व ईश्वर का शरीर है। उसी भाव से उसके साथ बर्ताव करे। भक्ति नौ प्रकार की है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवा, अर्चन, वन्दन' दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन अर्थात् शरणागति। इनमें प्रेम-भाव की प्रधानता है। किन्तु इन कर्म-ज्ञान-भक्तियोग को ईश्वर की प्राप्ति का साधन हैं, यह मन से त्याग दो। तब क्या करें—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् हे अर्जुन! तुम कर्म, ज्ञान, भक्ति योग-रूप समस्त धर्मों के अनुष्ठान में उपाय बुद्धि का त्याग करके, न कि स्वरूप से त्याग करके, एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ। अर्थात् एकमात्र मुझे ही कर्ता, आराध्य, प्राप्य, प्रापक रूप से अनुसंधान करो। मैं स्वयं मेरी प्राप्ति के विरोधी पापों से तुम्हें मुक्त कर दूँगा। तुम शोक मत करो।

इस प्रकार ईश्वर अपनी वस्तु को पाकर हर्ष निर्भर हो उठता है। ऐसे ईश्वर का शरणागत जीव किसी से द्वेष नहीं करता है। वह जीव नरक-द्वार काम, क्रोध और लोभ को त्याग देता है। सर्वभूत सुहृद हो शान्तभाव से प्रारब्ध कर्म को भोगकर अपने परमात्माका सायुज्य प्राप्त करता है, श्रीकृष्ण जयन्ती के पावनपर्व पर उनका सन्देश 'गीता' की ओर ध्यान देने से अपना और अपने राष्ट्र का कल्याण ही कल्याण होगा। —**सम्पादक**

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के उपासक "गो० तुलसी"

वृन्दावन २५।७।९३ स्थानीय श्रीतुलसीराम दर्शन स्थल ज्ञानगुदड़ी में विविध कार्यक्रमों के साथ श्रीतुलसी जयन्ती समारोह बन्दनीय वीतराग संत श्रीवामदेवजी महाराज की अध्यक्षता में समन्न हुआ। स्वामी श्रीभरतदासजी महाराज द्वारा गो० श्रीतुलसीदासजी का पूजन किया गया एवं महिला मण्डल ने सवाद्य सस्वर सुन्दर काण्ड का पाठ किया।

सायंकालीन श्रद्धाजलि सभा में प्रवचन करते हुए **अनन्त-सन्देश सम्पादक पं.श्रीकेशवदेव शास्त्री जी** ने तुलसीदास जी के मानस में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का विवेचन करते हुए अनेक प्रसंग उद्धृत किये—"उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।" का विस्तृत व्याख्यान करते हुए श्रीतुलसीदासजी को विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का उपासक सिद्ध किया। आज के अशान्त जगत् में इस सिद्धान्त के प्रवल प्रचार-प्रसार पर जोर दिया। मुख्य वक्ता के रूप में प्रवचन करते हुए **स्वामी विवेकानन्दजी महाराज** ने पावन दर्शन स्थली के द्वार पर अवैध अतिक्रमण हटाने तथा तुलसीदासजी की प्राचीन कुटी को अवैध कब्जे से भुक्त कराने की अपील की। **विशिष्ट अतिथि जगद्गुरु स्वामी श्रीदेवनारायणाचार्य त्रिदण्डीजी महाराज** ने प्रवचन करते हुए कहा कि कलियुग के जीवों का निस्तार-करने के लिए महानुभाव गो० तुलसीदासजी का अवतार हुआ।

वि० अ० सांसद स्वामी साक्षीजी महाराजने—जीव का कल्याण करना भगवन्नाम का स्वभाव बतलाया। राम नाम के स्मरण को जीवन तथा इसके विस्मरण को मृत्यु की संज्ञा प्रदान की। भगवान् राम के नाम और लीलाओं के गायक गो० तुलसीदास जी की देन से भारत राष्ट्र कभी उऋण नहीं हो सकता। अध्यक्षीय भाषण करते हुए **वीतराग सन्त स्वामी श्रीवामदेवजी महाराज** ने स्पष्ट किया कि अयोध्या में जहाँ श्रीरामलला विराजमान है उनकी सन्निधि में उसी स्थान पर गो० तुलसीदासजी ने अपने मानस की रचना की थी अत: उसी स्थान पर शीध्रातिशीघ्र मन्दिर निर्माण करना तुलसीदासजी को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। प्रत्येक भारतीय को इस कार्य के लिये बड़े से बड़े बलिदान हेतु तैयार रहना चहिये। सरकार विवादित ७० एकड़ स्थान के किसी एक भाग में मन्दिर बनवाना चाहती है—यह बेईमानी है क्योंकि प्रत्येक रामभक्त यह चाहता है कि मन्दिर उसी स्थान पर बने जहाँ श्रीरामलला विराजमान हैं। प्रमुख वक्ताओं में श्री चैतन्य ब्रह्मचारी, श्रीब्रह्मचैतन्यजी ब्रह्मचारी जी श्रीश्यामसुन्दरजी शास्त्री, परम विदुषी वैष्णवदासी जी, उल्लेखनीय हैं। सभा के आरम्भ में श्रीकेशवदेव हरिजी "मधुर" ने श्रीतुलसीजी को माल्यार्पण से कार्यक्रम का शुभारम्भ किया।

दर्शन स्थल के प्रबन्ध ट्रस्टी श्रीप्राणगोपालजी आचार्य ने कार्यक्रम के अन्त में धन्यवाद ज्ञापन किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ० गिरिराज जी शास्त्री द्वारा किया गया। मध्याह्न वैष्णव सेवा-भंडारा एवं प्रसाद वितरण के कार्यक्रम भी सम्पन्न हुए। प्रेषक—प्राणगोपाल आचार्य

बनेड़ा में ३७ वां श्रीलक्ष्मीनारायण महायज्ञ का अयोजन

समस्त भगवत प्रेमी सज्जनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि स्वामी श्रोकान्ताचार्यजी महाराज के तत्वावधान में विश्वकल्याण की भावना से नौकुण्डीय श्रीलक्ष्मीनारायण महायज्ञ का सैंतीसवां आयोजन श्री मोगरिया जी की धर्मशाला (बस स्टेण्ड) बनेड़ा राजस्थान में दिनांक ७-९-९३ से दिनांक १२-९-९३ तक किया जा रहा है। अत: सभी भगवत प्रेमीजनों से प्रार्थना है कि आयोजन में पधार कर तन, मन, धन से सहयोग कर महायज्ञ को सफल बनावें। —**जमनालाल बांगड़** अध्यक्ष

गताँक से आगे

सिद्धाश्रम (बक्सर) माहात्म्यम्

अनन्तश्री विभूषित श्रीमज्जगद्गुरु श्रीविष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डी स्वामीजी महाराज (बिहार)

卐

रावणादिवधे घोरे ब्रह्महत्यामवाप सः। ब्राह्मणस्य च पुत्रोऽभूद्रावणो नाम राक्षस.॥
पुलस्त्यवंशे चोत्पन्नः क्रूरकर्मा सुदारुणः। ब्रह्महत्यादिपापानां बिना कर्तुं जगत्पतिः॥
उवाच वं गुरुं शान्तं वशिष्ठं मुनिपुङ्गवम्। अतीतानागतं ज्ञानं दीप्तपावक सन्निभम्॥
अनाषाढसमायुक्तं युक्तयज्ञोपवीतिनम्। मौञ्जीरक्षितमध्यं च कमण्डलुकरं परम्॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामः कमललोचनः। पण्डितः सर्वशास्त्राणां विनयावनतकन्धरः॥
केन दानेन तीर्थेन कर्मणा केन वा प्रभो। अचिरेणैव कालेन ब्रह्महत्या विनश्यति॥

और रावण आदिक के वध करने पर वह राम ब्रह्महत्या को प्राप्त किये। रावण नाम का राक्षस विश्वश्रवा ब्राह्मण का पुत्र था। पुलस्त्य महर्षि के वंश में अत्यन्त दारुण क्रूर कर्म करने वाला उत्पन्न हुआ था, जगतपति रामचन्द्र ने ब्रह्महत्या आदि पापों को दूर करने के लिये। मुनि-पुङ्गव शान्त गुरु बशिष्ठ से वचन को कहा, वह वशिष्ठ मुनि भूत और भविष्य को जानने वाले थे तथा दहके हुये अग्नि के समान तेज वाले थे और अनाषाढ से समायुक्त थे तथा यज्ञोपवीत वाले थे और मौञ्जी मेखला कमर में बांधे थे तथा हाथ में कमण्डलु लिये थे। उस वशिष्ठ महर्षि से दोनों हाथों को जोड़-करके तथा विनय से कन्धों को नवा करके सब शास्त्रों के पण्डित कमलनयन रामचन्द्र ने पूछा। हे प्रभो गुरुदेव ! किस दान से या किस तीर्थ से अथवा किस कर्म से बहुत जल्दी ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है।

इति पृष्टो महाभागो वशिष्ठो ब्रह्मणः सुतः। उवाच वचनं गोप्य क्षणं ध्यानपरायणः॥
अस्ति कारूषदेशे तु वेदगर्भा पुरी पुरा। तत्र स्नात्वा च हुत्वा च दृष्ट्वा चैत्ररथं वनम्॥
ब्रह्महत्या सहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात्॥

इस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र महाभाग वशिष्ट मुनि से राम ने पूछा, तब क्षण भर ध्यान करके वशिष्ठ महर्षि ने गोप्य वचन को राम से कहा। पहले कारूष देश में वेदगर्भा (बक्सर) पुरी है उस बक्सर तीर्थ में स्नान करके तथा हवन करके और चरित्र-वन को देख करके हजारों ब्रह्महत्यायें उसी समय नष्ट हो जाती हैं।

राम उवाच

भगवन् प्रष्टुमिच्छामि यदि मे ब्रूहि तत्त्वतः। कस्य हत्या पुरा नष्टा कथ चैत्ररथ भुवि॥
एतच्छ्रुत्वा वशिष्ठेन वचो रामस्य धीमतः। उवाच पूर्ववृत्तान्तं वशिष्ठो वाग्विशारदः॥

राम ने कहा कि—हे भगवन् ! मैं पूछने की इच्छा करता हूं यथार्थ मुझसे तुम कहो. पहले

पृथ्वी पर चरित्र-वन में किस मनुष्य की ब्रह्महत्या कैसे नष्ट हुई है। वशिष्ठ ने बुद्धिमान् रामचन्द्र के इस वचन को सुनकर के वाग्विशारद पूर्व वृत्तान्त को कहा।

यज्ञदत्तोऽभवद्विप्रः सोमवंशविभूषणः। तस्य पुत्रो गुणनिधिः पापिष्ठो दुष्टकर्मकृत् ।।
मद्यपानं कृतं तेन वेश्यया चन्द्रचूडया। धनार्थे घातिता विप्रा दुष्टेन परिपन्थिना ।।
तस्य दुश्चरितं दृष्ट्वा यज्ञदत्तो व्यचिन्तयत्। अपुत्री स्वर्गं प्राप्नोति कुपुत्री नरकं व्रजेत् ।।
कुपुत्रो मृत एवास्ति मृतो जीवति सज्जनः। दग्ध कुलं कुपुत्रेण सुपुत्रेण विभूषितम् ।।
यस्य पुत्रो दुराचारस्तमाहुः पतितं बुधाः। पुत्रेण संशिता ये च ज्ञायन्ते हृदये नृणाम् ।।
तस्मादेवं बहिः कृत्वा पापिष्ठं पुरुषाधमम्। मुखं तिष्ठामि भवने भार्यया विगतज्वरः ।।
इति संचिन्त्य मनसा तं बहिः कृतवान् द्विजः। स चचार विमूढात्मा विषण्णवदनस्तदा ।।
ततो गच्छन् ददर्शाग्रे ब्राह्मणान्वेदवादिनः। तानुवाच स पापात्मा प्रणिपत्याग्रतः स्थितः ।।

सोम के वंश में विभूषण यज्ञदत्त नाम का विप्र हुआ था उस यज्ञदत्त विप्र का पुत्र गुणनिधि नाम का अत्यन्त पापी बुरा कर्म करने वाला था। वह गुणनिधि नाम का द्विज चन्द्रचूड़ा नाम की वेश्या के साथ मद्यपान किया और उस परिपन्थी दुष्ट ने धन के लिये विप्रों को मारा। उस गुणनिधि पुत्र के दुराचार को देखकर के यज्ञदत्त विप्र ने विशेष रूप से चिन्तवन किया कि बिना पुत्र वाला स्वर्ग प्राप्त करता है और बुरा पुत्र वाला नरक को जायेगा। बुरा पुत्र जीता हुआ मरा ही है तथा सज्जन मरा हुआ भी जीता है. कुपुत्र से कुल दग्ध हो जाता है और सुपुत्र से कुल विभूषित होता है। जिसका दुराचारी पुत्र है बुधजन उसको पतित कहते हैं और जो पुत्र से संशित है वे सब नरों के हृदय में जाने जाते हैं। तिस कारण से इस प्रकार अति-पापी पुरुषाधम इस पुत्र को ग्राम से बाहर करके ताप से रहित घर में अपनी भार्या के साथ सुख से रहूंगा। इस प्रकार वह यज्ञदत्त ब्राह्मण मन में विचार करके उस गुणनिधि नाम के पुत्र को ग्राम से बाहर कर दिया, तिसके बाद उदास मुख वाला विमूढात्मा वह गुणनिधि नाम का ब्राह्मण इधर उधर विचरने लगा। तिसके बाद वह पापी गुणनिधि मार्ग में जाते हुये वेदवादी ब्राह्मणों को देखा और साष्टांग प्रणाम करके आगे स्थित होकर के उन ब्राह्मणों से कहा।

नाना प्रार्थनया वाक्यं निजगाद कुमारकः। रतो ब्राह्मणपुत्रं च व्याजहार महातपाः ।।
किमर्थमागतस्तात किमर्थं त्याजितो ह्यसि ।।

गुणनिधि नाम के कुमार ने अनेक प्रकार की प्रार्थना से वाक्य को कहा, तिसके बाद उस ब्राह्मण के कुमार से महातपा मुनि ने कहा। कि हे तात कुमार! किस काम के लिये तूँ यहाँ आया और निश्चय करके किस कारण से तुम त्याग दिये गये हो।

कुमार उवाच

पित्रा विसर्जितश्चाहं सदा कर्मनिराकृतः। तदुपायो यथावत्स्यात्तथा कार्यं मयानघ ।।

गुणनिधि कुमार ने कहा कि—हे पाप रहित महातपा मुने! बुरा कर्म करने के कारण से पिता ने मुझको यहाँ पर त्याग दिया है इससे उस पाप को दूर करने के लिये जो यथार्थ उपाय हो, उसको तुम कहो जो मेरे करने योग्य हो। (क्रमशः)

★

गतांक से आगे

पूज्य आचार्य डॉ० रामकृष्णजी की—

शंका का समाधान

लेखक - प्राचार्य डा० जयनारायण मल्लिक

एम० ए० द्वय, प्राप्त-स्वर्ण-पदक, डिप० एड०, पी०एच०डी० (अंग्रेजी) साहित्याचार्य, साहित्यालंकार

अवतार श्रीमन्नारायण भगवान् का नहीं होता, अधर्म और अन्याय के शमन के लिये, धर्म और न्याय की रक्षा के लिये तथा मानवता के पथ-प्रदर्शन के लिये शेषशायी, जगन्नाथ, भगवान् वासुदेव का अवतार होता है। वैसे तो सब भगवान् एक ही हैं, पर भिन्न भिन्न रूपों के भिन्न-भिन्न कार्य हैं। भगवान् का पहला रूप परमप्रद और माया-मंडल के स्वामी, परब्रह्म परमेश्वर श्रीमन्ना-रायण भगवान् हैं, भगवान् का दूसरा रूप अन्तर्यामी भगवान् हैं, जो सर्वत्र व्याप्त हैं, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, पार्थिव दृष्टिकोण से जिन्हें हम निर्गुण, निराकार भी कह सकते हैं। उपनिषदों ने भगवान् को सगुण, साकार भी कहा है और निर्गुण, निराकार भी। आचार्य शंकर यह देखकर घबड़ा गये। उन्होंने देखा कि एक ही ब्रह्म निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार, दोनों कैसे हो सकते हैं? दोनों विरोधीगुण (Contradictory) इसलिये उपनिषदों के दो पक्ष हैं, व्यवहार पक्ष और परमार्थ पक्ष। व्यवहार पक्ष में ब्रह्म सगुण साकार हैं, परमार्थ पक्ष में ब्रह्म निर्गुण, निरा-कार। रामानुज स्वामी ने कहा कि यह समझ की फेर है। उपनिषदों में विरोध है ही नहीं। जहाँ ब्रह्म को निर्गुण, निराकार कहा गया है, उसका मतलब है कि ब्रह्म में कोई हेयगुण (दुष्ट गुण या प्राकृत गुण सत्त्व, रज, तम) नहीं हैं। ब्रह्म निर्मल और निर्विकार है, अतः वह निर्गुण है। ब्रह्म अशरण शरण, पतित-पावन, शरणागत-वत्सल, तथा असंख्य कल्याणगुणों के तथा शुभगुणों के सागर हैं, अतः वे सगुण भी हैं। ब्रह्म का दिव्य विग्रह प्राकृत तत्वों से नहीं बना है, नहीं तो उनमें भी रोग, शोक, दुःख, बचपन, बुढ़ापा आजाता। उनका दिव्य विग्रह सदैव निर्मल, निर्विकार रहा करता है। प्रकृति सदैव उनकी दासी ही बनी रहती है, स्वामिनी नहीं बन पाती। यह प्राकृतिक संसार माया का कारा-गार है। कारागार में दो तरह के लोग आते हैं। १—एक तरह के लोग अपराधी, जिन्हें सजा के रूप में कारागार का दंड दिया जाता है, उन पर कारागार का नियम लागू रहता है। २—दूसरे तरह के लोग, निरीक्षक लोग, जैसे डाक्टर या एस. डी. ओ., जो लोग कैदी की दशा और कारागार की व्यवस्था देखने के लिये कारागार में जाते हैं। उन पर कारागार के नियम लागू नहीं होते। वे अपनी इच्छा से कारागार में जाते हैं और अपनी इच्छा से कारागार से निकल भी आते हैं। उसी प्रकार भगवान् का और महापुरुषों का अवतार है। वे अधर्म और अन्याय के शमन तथा धर्म और न्याय की रक्षा एवं मानवता के पथ-प्रदर्शन के लिये अपनी इच्छा से प्राकृतिक संसार में या माया के कारागार में अवतार ग्रहण करते हैं और अपना कार्य समाप्त कर अपनी ही इच्छा से यहां से चले भी जाते हैं। दुनिया की मोह-ममता और माया उन्हें पकड़ नहीं पाती। प्रकृति सदैव उनकी दासी ही रहती है, स्वामिनी नहीं बन पाती। प्राकृतिक संसार में भी अन्तर्यामी भगवान् सर्वत्र हैं, पर हम

उन्हें भौतिक स्थूल दृष्टि से देख नहीं पाते। वे सर्वत्र वर्तमान रहने पर भी भौतिक स्थूल दृष्टि के सामने अदृश्य ही रहते हैं। ये सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जान जाते हैं, पर हम उन्हें नहीं देख पाते।

भगवान् का तीसरा रूप व्यूह रूप है। व्यूह चार हैं,—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध। (चतुर्व्यूह)। इनमें वासुदेव, क्षीर सागर में शेषशायी भगवान् षड्गुण सम्पन्न पूर्णब्रह्म हैं, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ब्रह्म के अंशमात्र है, पूर्णब्रह्म नहीं। इन तीनों में केवल दो दो गुण विकसित हैं। ब्रह्म चिदचिद्विशिष्ट है। जीव भी ब्रह्म का अंशमात्र है, जैसा भगवान् ने गीता में स्वयं कहा है.— "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।" मेरा स्वतन्त्र विचार है कि चतुर्व्यूहों में से भगवान् वासुदेव पूर्णब्रह्म हैं, जो कभी कभी वैभव रूप में अवतार भी लेते हैं, क्योंकि वे जगदीश्वर जगन्नाथ हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध पूर्णब्रह्म नहीं हैं, जगदीश्वर, जगन्नाथ नहीं हैं। वे ब्रह्म के अंशमात्र हैं। वे माया-मंडल के स्वामी नहीं हैं, व्यवस्थापक मात्र हैं। संसार के स्वामी तो वासुदेव भगवान् हैं। ब्रह्मा और शिव संसार का सृजन और संहार करने के लिये व्यूहों से नियुक्त उच्चकोटि के जीवमात्र है।

(इ) व्यूह विषयक अन्य जिज्ञासायें—

(१)—व्यूह चार हैं, वासुदेव, संकर्षण. प्रद्युम्न. अनिरुद्ध। इन में वासुदेव, जगदीश्वर, जगन्नाथ हैं और संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ब्रह्म का अंश रहने पर भी संसार के व्यवस्थापक मात्र (Managers) हैं, स्वामी नहीं। ये व्यूह उच्चकोटि के जीवों में से सृजन और संहार के लिये ब्रह्मा और शिव को नियुक्त कर देते हैं।

(२) चतुर्व्यूहों का निवास-स्थल कहाँ है? इसके विषय में पाँचरात्र ग्रन्थ स्पष्ट नहीं है। अधिकांश मान्यता यह है कि चतुर्व्यूहों का निवास स्थल परमपद ही है, पर क्षीरसागर में शेषशायी भगवान् ही को वासुदेव कहा जाता है। वह क्षीर सागर इस पृथ्वी पर नहीं है। सम्भवतः इस ब्रह्माण्ड या सौर-मण्डल में भी नहीं है। वैकुण्ठनाथ, परब्रह्म परमेश्वर, श्रीमन्नारायण भगवान् ब्रह्म के पर रूप हैं, व्यूह रूप नहीं। 'अर्थ-पंचक' ग्रन्थ में भगवान् के पाँच रूपों का वर्णन है, पर, व्यूह, वैभव (अवतार), अन्तर्यामी (सर्वव्यापक) और अर्चावतार (पूजा के लिये भगवान् की मूर्तियाँ)। पर ब्रह्म, परमेश्वर, तो वैकुण्ठनाथ श्रीमन्नारायण भगवान् हैं। क्षीर-सागर में शेषशायी वासुदेव को कुछ विद्वान् व्यूह रूप भगवान् मानते हैं और संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध को ब्रह्म का अंश मानकर इनका निवास स्थल परमपद के एक भाग को मानते हैं। पांचरात्र के अनुसार यही ठीक है। आज से लगभग साठ वर्ष पहले कुछ विद्वानों ने White Sea को क्षीरसागर और Scandi Navia के टापू को श्वेत-द्वीप कहा था, पर यह सिद्धान्त अधिक दिनों तक नहीं टिक सका। उस टापू को श्वेत द्वीप कहने का कारण था कि White Sea का पानी भी उजला था और वहाँ के निवासी भी सब उजले थे। कोई काले रंग का आदमी नहीं था। यह तो निश्चित है कि क्षीरसागर परमपद में नहीं है। यह माया-मंडल या लीलाविभूति या प्राकृत संसार के अन्तर्गत ही है। पर मैं यह नहीं कह सकता [और अन्य कोई भी नहीं कह सकता] कि क्षीरसागर किस ब्रह्माण्ड में है। वेद इतना बतलाते हैं कि ब्रह्म के तीन चरणों में परमपद हैं और एक चरण में यह माया मण्डल या यह प्राकृतिक संसार है।

पादोऽस्य विश्वाभूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि।

कोई नहीं जानता कि इस प्राकृतिक संसार का विस्तार क्या है, यह कब और कहाँ से शुरू हुआ है और कहाँ इसका अन्त है तथा सृष्टि और प्रलय की लीला कब शुरू हुई और कब तक चलेगी। माया-मण्डल या प्राकृतिक संसार ही का ओर-छोर, आदि-अन्त हम नहीं पारहे हैं, तो परमपद तो इससे तिगुना बड़ा है। कोई नहीं जानता कि सृष्टि और प्रलय का क्रम कब शुरू हुआ और कब तक चलेगा। परब्रह्म परमेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् परमपद में निर्मल, निर्विकार शुद्ध सत्त्व के दिव्य विग्रह में सदैव वर्तमान रहते हैं। सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी भगवान् व्यापक रूप से स्थूल भौतिक दृष्टि से अगोचर, सर्वत्र वर्तमान हैं और सब कुछ देखते रहते हैं। भगवान् का व्यूह रूप क्षीरसागर में शेषशायी वासुदेव के रूप में या जगदीश्वर-जगन्नाथ के रूप में वर्तमान हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूपों में व्यूह भगवान् परमपद में वर्तमान है। भगवान् के भिन्न-भिन्न अवतार उनके वैभव रूप के अन्तर्गत हैं। भगवान् के अर्चावतार रूप उनकी सगुण, साकार मूर्तियाँ हैं।

(३) भगवान् का क्षीरसागरशायी रूप व्यूह के अन्तर्गत वासुदेव भगवान् हैं। संकर्षणादि रूप परमपद में वर्तमान हैं। क्षीरसागरशायी वासुदेव भगवान् चतुर्भुज रूप है। पुरुषसूक्त में उनके विराट् रूप का वर्णन है, इसलिये उन्हें सहस्रभुज कहा गया है।

(४) लक्ष्मण जी शेष के और संकर्षण के अवतार हैं। शेष और सकर्षण एक ही व्यक्ति है।

(५) व्यूह रूप में चतुर्व्यूह भगवान् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। कृष्णावतार में थे, नाम व्यूहरूप से लिये गये हैं। वैसे कृष्ण वसुदेव के पुत्र होने से भी वासुदेव कहलाते थे (वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः), संकर्षण का अवतार बलराम नाम से हुआ था, इसलिये कोई उन्हें संकर्षण कहते थे, कोई उन्हें बलराम। वे जगदीश्वर तो थे ही, क्योंकि ब्रह्म के अंश भी तो ब्रह्म हैं। आग की चिनगारी भी तो आग है। व्यूह रूप भगवान् तो जगन्नाथ हैं हीं। वैसे भगवान् के सभी रूप, पर. व्यूह, वैभव, अन्तर्यायी और अर्चावतार एक हैं। विष्णु-गायत्री ने भगवान् के तीन नामों और रूपों का प्राबल्य दिखलाया है—

"ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि, तन्नो। विष्णुः प्रचोदयात्।" ये तीन रूप और नाम हैं—परमपद के स्वामी, नारायण, क्षीर-सागर में शेषशायी, भगवान् वासुदेव तथा भगवान् विष्णु जो जगन्नाथ जगदीश्वर हैं।

(ई) प्रासंगिक जिज्ञासा के उत्तर—

शरीर के मुख्यतः विशिष्टाद्वैत वेदान्त के अनुसार दो ही भेद हैं, स्थूल और सूक्ष्म। अद्वैत वेदान्त ने कार्य के अनुसार सूक्ष्म शरीर के तीन और भेदमाने हैं, कारणशरीर, लिंगशरीर, दिव्य-शरीर। जीवित, जागृत अवस्था में स्थूल शरीर कार्य करता है, जीवित सोई हुई अवस्था में सूक्ष्म शरीर कार्य करता है। जब आदमी स्वप्न देखता रहता है, जब शरीर बाह्य जगत् में नहीं घूमता, वह अन्तः प्रदेश (Internal life) में घूमता रहता है, मर जाने पर जीव कारणशरीर में चला जाता है, जीवित शरीर जलते हुये दीप की तरह है। जीवित शरीर के मर जाने के या दीपक बुझ जाने के दो कारण हो सकते हैं—१. या तो दीपक का तेल ही समाप्त होगया है, तब लाखों प्रयास करने पर भी दीपक जिन्दा नहीं रह सकता, तेल या (Capacity of life) जो उसमें नहीं है वह जिन्दा रहेगा कैसे ?

(क्रमशः)

गतांक से आगे—

सनातन धर्म का अन्त्यजपरक दृष्टिकोण

—डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री, हैदराबाद

卐

गोकुले कन्दुशालायां तैलचक्रेक्षुयन्त्रयोः।
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं, यन्त्राकरे कारुकशिल्पहस्ते।
स्त्रीबालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥ २२८

प्राकाररोधे भुवनस्य दाहे, सेनानिवेशे विषमप्रदेशे।
आवास्य यज्ञेषु महोत्सवेषु, तेष्वेव दोषा न विकल्पनीयाः ॥ २३

चर्म्मभाण्डस्तु धाराभिस्तथा यन्त्रोद्घृतं जलम्।
आकरोदगतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥ २३६ अत्रि

अर्थात् - (१) गोशाला में, भड़भूजे अथवा हलवाई की दुकान पर, कोल्हू [तेलनिकाल ने के यन्त्र] में तथा गन्ने का रस निकालने के यन्त्र में, स्त्रियों और रोगी मनुष्य के विषय में शौचाशौच का विचार यथासम्भव ही रखना चाहिये। (२) दूध दोहने के पात्र में, घी आदि के चमड़े के कुप्पे में, कुयें से जल निकालने के लिये चमड़े से बने चड़स आदि में, कोल्हू आदि यन्त्रों में, कारखानों में बने हुये द्रव्यों में, स्त्री, बालक और वृद्धों के आचरणों में तथा जो हमें प्रत्यक्ष दिखाई न दें वे सब पदार्थ हमें पवित्र ही मानने चाहिये। (३) जब शत्रुने नगर का घेराव कर रखा हो, मकान जलाये जा रहे हों, सैन्यावास में तथा इसी प्रकार के विषम स्थानों में, अपूर्ण यज्ञों में एवं विवाहादि उत्सवों के समय स्पर्शास्पर्श का विशेष ध्यान न करना चाहिये। (४) चर्म भाण्ड से अन्य पात्र में धारा बांधकर उंडेले घृतादि पदार्थ से दूसरा पात्र अपवित्र नहीं होता। इसी प्रकार भाप के द्वारा खींचा गया जल तथा खान से निकली वस्तुयें कभी अपवित्र नहीं होतीं।

यही नहीं, इससे भी एक पग आगे बढ़कर वृहत्पाराशरीय धर्मशास्त्र ६/२९७ में स्पर्शास्पर्श के सम्बन्ध में लिखा है—

देवयात्रा विवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥

अर्थात - देवयात्रा [तीर्थ यात्रा, रथ यात्रा आदि] विवाह, यज्ञायोजन, सभी प्रकार के उत्सवों [मेलों] में स्पर्शास्पर्श नगण्य होता है।

बोधायन स्मृति १।५।६२ में लिखा है—

आसनं शयनं यानं नावमपि तृणानि चु।
चाण्डालपतितस्पृष्टं मारुतेनैव शुद्धचति ॥

अर्थात—बैठने के आसन रूप स्थान—कुर्सी, रेल, मोटर, जलयान, वायुयान आदि की सीटें [पीठ] सोने के स्थान, सभी प्रकार के वाहन, नाव, घास फूँस आदि वस्तुयें, चाण्डाल तथा पतित व्यक्तियों अथवा जीवों द्वारा स्पृष्ट वस्तुयें वायु लगने मात्र से शुद्ध हो जाती हैं।

लोक व्यवहार में भी कहा जाता है—

'पथि शुद्रवदाचरेत' अर्थात् मार्ग चलते या यात्रा करते हुये व्यक्ति को अपना व्यवहार शूद्रवत् ही रखना चाहिये तथा "शुष्को चर्म काष्ठवत्" सूखे चर्म को लकड़ी जैसा ही समझना चाहिये अर्थात् जैसे लकड़ी की खड़ाऊँ पहन कर सब कार्य किये जा सकते हैं वैसे ही सूखे चमड़े को धारण कर भी किये जा सकते हैं, उसमें कोई दोष नहीं है। वस्तुतः यह कथन तर्क संगत नहीं है क्योंकि जैसे बाथरूम, कितना ही स्वच्छ और आकर्षक क्यों न हो, कोई वहाँ बैठकर योजना करना पसन्द नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार चर्म निर्मित वस्तु धारण कर कोई विवेकशील व्यक्ति देवार्चन, भोजन आदि नहीं कर सकता। यह सही है। सनातन धर्म आचार को जीवन में प्रमुख स्थान देता है। उसकी मान्यता है—'आचारः प्रथमो धर्मः' अर्थात् आचार मानव का पहला धर्म है। तथा आगे चलकर स्पष्ट उद्घोष करता है—'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' अर्थात् आचारहीन व्यक्ति का शुद्धिकरण वेदों द्वारा भी सम्भव नहीं। परन्तु यह सब होते हुये भी वह आचार को एक सीमा तक ही मान्यता देता है, निरवधि नहीं और इसीलिये भक्ष्याभक्ष्य दोष के कारण पतित हुये व्यक्ति के उद्धार का उपाय भी अपने शास्त्रों के माध्यम से इस प्रकार प्रशस्त करता है—

राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः।
पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात् कृच्छ्र त्रयं चरेत्॥ अत्रिस्मृति ७९

अर्थात् अनार्य राजाओं अथवा म्लेच्छ, चाण्डाल आदि द्वारा यदि कोई द्विज बलपूर्वक पतित कर दिया गया हो तो उसे चाहिये वह पुनः अपना संस्कार कराकर तीन कृच्छ्र व्रत करें और पुनः अपने धर्म में आरूढ़ हो जाये।

यह शुद्धि संस्कार भी निरवधि नहीं है। इसके सम्बन्ध में यह प्रावधान किया गया है—

गृहीतो यो बलान्म्लेच्छैः पंच षट् सप्त वा समाः।
दशार्दिविंशतिर्यावत् तस्य शुद्धिर्विधीयते॥ देवल स्मृतिः ५६

जिस व्यक्ति को म्लेच्छों ने बलपूर्वक पतित कर डाला हो और विवश होकर उसे भक्ष्याभक्ष्य सेवन करते हुवे पाँच, छः, सात अथवा दस बीस वर्ष पतितावस्था में बिताने पड़े हों उसकी शास्त्रानुमोदित विधि से शुद्धि की जा सकती है।

हम पहले कह आये हैं कि सनातन धर्म जन्मना वर्ण व्यवस्था में पूर्ण आस्था रखता है क्योंकि उसका आधार प्राकृतिक अथवा वैज्ञानिक है। परन्तु उसके इस दृष्टिकोण को कुछ लोग हेय, संकुचित अथवा उपहास की दृष्टि से देखते हैं यह भुलाकर कि वे स्वयं इस सम्बन्ध में कितने अन्धकार में हैं। आर्य समाज ने जन्मनावर्ण व्यवस्था के विरुद्ध प्रचार के लिये कमर कसी अवश्य परन्तु वे इस जन्मना वर्ण व्यवस्था को जुठलाने में कृत-कार्य तो न हो पाये, हाँ वर्ण-संकरता की वृद्धि अवश्य समाज में कर गये। उनके दुष्प्रचार से प्रेरित होकर कुछ तथा-कथित हरिजनों ने जन्मना वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करते हुये ब्राह्मण को कोसना तो आरम्भ किया परन्तु वे स्वयं जन्म से चली आई वर्ण व्यवस्था की लक्ष्मण रेखा को आज तक नहीं लांघ पाये। आज जब कि जाति, वर्ण,

क्षेत्रिय आदि को नगण्य मानकर खान, पान, विवाह आदि का प्रचलन बढ़ता जा रहा है और अपनी वृद्धि के साथ एड्स जैसे रोगों को बढ़ाया जा रहा है वहीं आज भी चमार किसी भंगी के साथ अथवा एक भंगी किसी चमारके साथ खान, पान, रोटी बेटीका सम्बन्ध स्थापित करने से परहेज करता है। वह भले ही वोट की राजनीति पर जिन्दा रहने वाले तथाकथित नेताओं के बहकावे में आकर आरक्षण की सुविधा प्राप्त कर प्रतिभाओं का गला काटने में सफल क्यों न हो जाये या हो रहा हो परन्तु वर्ण व्यवस्था भंग कर अपने कुल क्रमागत कौशल से हाथ धो बैठने में उसकी रुचि आज भी नहीं है। आज कुल क्रमागत व्यवस्थाओं के क्षतिग्रस्त हो जाने से देश में प्रदूषण बढ़ रहा है, कुटीर उद्योगों की महनीयता में ह्रास आया है। अनाप-सनाप निर्णय लिये जाने से देश के व्यावहारिक पक्ष तथा प्रशासनिक क्षमता में न्यूनता आई है और इसके कारण असन्तोष की वृद्धि हुई है।

जन्मना वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध कमर कसने वाला आर्य समाज अपने उद्देश्य में कितना सफल हुआ है यह नीचे लिखी दो घटनाओं से जाना जा सकता है—

कई वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में वर्ण व्यवस्था जन्म से या कर्म से—विषय पर सनातन धर्म तथा आर्य समाज के मध्य शास्त्रार्थ हुआ। जब शास्त्रार्थ चरम सीमा पर था और सनातन धर्मी विद्वान के तर्कों से जनता प्रभावित थी तभी एक आर्य नेता अपने स्थान से उठे और आक्रोश पूर्ण स्वर में चिल्लाते हुये बोले–'बन्द करो यह व्यर्थ की बकवास। वर्ण जन्म से नहीं कर्म से ही होता है। मैं अपने कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण अभी प्रस्तुत करता हूं। यह कहते हुये उन्होंने तनिक रुककर कहा–मैं जन्म से ब्राह्मण हूं और अपनी कन्या का विवाह किसी भी सुयोग्य हरिजन से करने के लिये तैयार हूं। यह सुनते ही सभा में जो ठहाका गूंजा कि दीवारें भी बधिर हो गईं। वे सज्जन इस अट्टहास को सुनकर भौंचक्के से रह गये। उनकी समझ में बहुत समय बाद आया कि उन्होंने स्वयं को ब्राह्मण तथा काम्यवर को हरिजन बताकर स्वयं 'जन्म से वर्ण' को स्वीकार कर लिया था।

दूसरी घटना भी इसी से मिलती जुलती है। एक हरिजन बालक को एक आर्य सज्जन ने पढ़ा लिखाकर गुरुकुल काँगड़ी का स्नातक बनाया और वेदालंकर की उपाधि दिलाई। अवसर पाकर वे एक राज्य में मन्त्री भी रहे। मन्त्री पद समाप्त होने पर जब पुनः उन्होंने वह पद पाने के लिये आरक्षित सीट से चुनाव लड़ा तो उनके संरक्षक उपर्युक्त सज्जन ने उन्हें समझाया कि वे पढ़-लिखकर वेदालंकार की उपाधि पाकर पण्डित बन ही चुके है, स्वयं अपने नाम के साथ लगाते भी हैं अतः हरिजन के लिये आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ना उनके लिये समूचित नहीं होगा, परन्तु उन्होंने चुनाव लड़ा और उनके संरक्षक को उनका विरोध करते हुये भरी सभा में कहना पड़ा—

काक पढाये पींजरा, पढ गये चारों वेद। समझाये समझे नहीं, रहे ढेड के ढेड ॥

समष्टि रूप में सनातन धर्म प्राणि मात्र का हित साधक है, ऐसा उदार धर्म है जो सभी के आत्यन्तिक कल्याण में रुचि रखता है। भगवान् श्रीकृष्ण की भाँति "न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः" उसका ध्येय वाक्य है। वह सबके प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है और सभी को आत्यन्तिक सुख, कल्याण और मंगल का भाजन बनते हुये देखना चाहता है। वह स्वयं और स्वकीय जनों के प्रति उदार तथा अन्य जनों के प्रति अनुदार हो—ऐसी बात भी नहीं है। वह एक और यदि मलवाही शूद्र, चर्म छेदक चर्मकार के स्पर्श का परिस्थित्यनुसार विरोध करता और चाण्डाल मुख दर्शन को पातक मानता है तो दूसरी ओर अपनी माँ, बहन, पत्नी—जिनसे क्रमशः उसने जन्म लिया, जिसके साथ

जननि जठर में पाँव—पसारे तथा जिसे जन्म दिया उनसे भी ऋतु काल में अस्पृश्य बना रहने में ही कल्याण मानता है। उन्हें भी चाण्डालवत् अदर्शनीय ही स्वीकार करता है। सनातन धर्म विज्ञान मूलक होने के कारण वह मल उठाने, ढोने वाले शूद्र से नहीं बल्कि तात्कालिक उसके संसर्गजन्य संक्रमण भाव से उससे दूर रखता है वह जानता है कि उसकी माँ, बहन, पत्नी भी तो यथावसर बालकों का मल स्वच्छ करती रही हैं। जब वे घृणा की पात्र नहीं बनी, तब निजवृत्ति में संलग्न ये समान ही मानव कैसे उसकी घृणा के पात्र हो सकते हैं ? वैसे भी सनातन धर्म के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में नैसर्गिकरूप चतुर्वर्ण की विशेषताओं का अन्तर्भाव होता है। प्रातःकाल जब मानव निद्रा त्याग कर उठता है तब उसका मुख लाल विपन्न, नेत्र नासिकादि मलपूर्ण तथा मल मूत्र त्याग के कारण वह स्वयं अशुचि होता है। उस समय क्योंकि उसकी स्थिति शूद्र की सी होती है अतः न वह मन्दिर में प्रवेश का अधिकारी होता है न चौके में। धोये हुये वस्त्रादि तक के स्पर्श से उसे दूर रहना पड़ता है। जब वह स्नानादि कर, पावन बन सन्ध्या वन्दनादि कृत्य सम्पादित करता है तब वही सही मानों में ब्राह्मण कहलाता है। जब वह रोजी-रोटी के लिये संघर्ष करने के लिये कर्मक्षेत्र में उतरता हैं तब उसकी संज्ञा क्षत्रिय हो जाती है और जब वह पैसा बचाने के लिये कतर ब्योंत का सहारा लेता है। एक एक पाई को दाँत से पकड़ता है उसकी गणना वैश्यों में होने लगती है।

वृत्ति के अनुसार मानव स्वभाव में यत्किंचित परिवर्तन तो आ जाना स्वाभाविक है परन्तु जन्मजात स्वभाव में अथवा वर्णगत संस्कारों में आमूलचूल परिवर्तन आ आना कदापि सम्भव नहीं। यही कारण है ब्राह्मण को 'अल्पसन्तोषी' जानकर ही बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों में अर्थ सम्बन्धी कार्य का दायित्व उसे सौंपा जाता है। इतिहास गवाह है कि खंजानची जैसे पद पर रहकर भी वह कभी ऐसी हेराफेरी नहीं करता जिससे स्वामी का दिवाला पिट जाये और उसके अल्प संतोषी स्वभाव और ब्राह्मणत्व पर आँच आये।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि छुआछूत जैसी धारणायें ब्राह्मणों की नहीं बल्कि विज्ञान की देन हैं। ब्राह्मणों ने केवल उनकी वैज्ञानिकता अवैज्ञानिकता के सम्बन्ध में लोक का मार्ग दर्शन मात्र किया है। वह विधान भी ब्राह्मणों की ही देन है कि प्रजा के पुण्य के छटे भाग का अधिकारी शुद्र हो और पाप का राजा।

द्विज मात्र से घृणा कर आज के अन्त्यज जिस बौद्ध धर्म का आश्रय ले रहे हैं उसके संस्थापक भगवान् बुद्ध ने स्वयं 'वेदज्ञ ब्राह्मणों के पूजन की भोजनादि द्वारा उनकी तृप्ति कराने की बात कही है। इन्हीं के त्याग और परिश्रम से 'वेद' आज तक सुरक्षित रह पाये हैं। इस स्थिति में हम सबका दायित्व होजाता है कि हम विवेकशील बनें और सनातन धर्म के प्रति दृष्टिकोण को पहचान कर वही करें जिससे देश, धर्म, संस्कृति, सभ्यता और परम्परा की रक्षा हो और हम सब श्रेय के भागी बनें तथा भारत आरत न रहकर फिर से विश्व गुरु पद पर अधिष्ठित हो, सगर्व उदघोष करें—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥

★

आत्म-चिन्तन

दयालु पुरुष दूसरे के दुःख से पीड़ित होता है, यह भावना ईश्वर के प्रति सर्वोत्कृष्ट पूजा के सदृश है, जिसे मनुष्य भगवदर्चना के रूप में उपस्थित कर सकता है।

गतांक से आगे

महाभारतामृतम्

★

सेनापति पद प्राप्तकर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा था कि पुत्र ! तुम जो चाहते हो सो वर आज मुझ से मांग लो। तब दुर्योधन ने कर्ण दुःशासन आदि से सलाहकर कहा, आचार्य ! यदि आप मुझे वर देरहे हैं तो युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर यहाँ मेरे पास ले आइये। राजन् ! तुम युधिष्ठिर का वध न मांगकर जीवित पकड़कर लाना चाहते हो, इससे सिद्ध है कि युधिष्ठिरका कोई शत्रु नहीं है, वह अजातशत्रु है। अथवा पाण्डवों का राज्य लौटाना चाहते हो। यह निश्चित है कि अर्जुन के युद्धभूमि से हट जाने पर यदि युधिष्ठिर दो घड़ी भी मेरे सामने खड़े होसके तो मैं जीवित उन्हें यहां लाकर खड़ा कर दूंगा। कौरव हर्ष निर्भर हो उठे। इस बात का अपने शिविरों में प्रचार भी कर दिया। धर्मराज को भी अपने गुप्तचरों से यह खवर लग गई। उन्होंने अपने भाइयों से कहा यदि ऐसा है तो अर्जुन मेरे पास रहकर युद्ध करेगा। जिससे दुर्योधन का यह मनोरथ सफल न हो सके। अर्जुन बोला राजन् ! द्रोणाचार्य का वध मुझे अभीष्ट नहीं और आपको ऐसी हालत में परित्याग करना भी अभीष्ट नहीं है। किन्तु दुर्योधन के मनोरथ को कभी भी सफल न होनेदूंगा। मैंने कभी झूठ नहीं बोला, मेरी पराजय नहीं हुई, प्रतिज्ञा करके जूठा किया हो ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता है। हमारे पक्ष की पराजय हो ही नहीं सकती। पाण्डवों का सिंहनाद हो उठा। घनघोर युद्ध प्रारम्भ होगया। द्रोण और धृष्टद्युम्न का युद्ध रोमाँचकारी था। द्रोण के पराक्रम को देख पाण्डव-पक्षीय सृंजय वीर काँप उठे। द्रोण ने रणभूमि में रक्त की नदी बहा दी।

उसी समय मायावी शकुनि ने सहदेव पर धावाकर उसे घायल कर दिया। सहदेव ने भी सात बाणों से शकुनि को भी बींध डाला। शकुनि रथ से कूद, गदा लेकर दौड़ा और सहदेव के सारथि को मार गिराया। दोनों का गदा-युद्ध होने लगा। द्रोण ने द्रुपद को क्षत-विक्षत कर डाला। भीम ने बीस बाण विविंशति को मारे पर उसे विचलित न कर सका। भीम ने उसके घोड़ों को गदा से मार डाला, तब विविंशति तलवार से युद्ध करने लगा। शल्य ने अपने भानजे नकुल को अनेक बाणों से बींध डाला। नकुल ने उसके घोड़ों, छत्र, ध्वज, सारथि और धनुष को काट डाला। धृष्टकेतु ने कृपाचार्य को सत्तर बाणों से घायल कर दिया। कृपाचार्य ने भी उसे रोक कर घायल कर दिया। सात्यकि ने कृतवर्मा की छाती में चोट की। उसने सात्यकि को क्षत-विक्षत कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सुशर्मा को मर्मघाती चोट की, सुशर्माने उसकी हँसली पर प्रहार किया। विराट ने वितर्कन पुत्र कर्ण को रोका। द्रुपद और भगदत्त का युद्ध, भूरिश्रवा और शिखण्डी, घटोत्कच और अलम्बुष, चेकितान एवं अनुविन्द, पौरव एवं अभिमन्यु, कृतवर्मा ने अभिमन्यु के धनुष को काट डाला। अभिमन्युने जब पौरव को बुरी तरह धरा में गिरा घायल किया, तब जयद्रथ दौड़ा, अब इन दोनों का भयंकर युद्ध होने लगा। वृद्धक्षत्र का पुत्र जयद्रथ और अभिमन्यु का घोर युद्ध होने लगा। शल्य ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया।

शल्य लोहे की बनी गदा लेकर अभिमन्यु की ओर दौड़ा। यह देख भीमसेन भी हाथ में गदा लिये जबरन अभिमन्यु को रोककर शल्य के सामने अविचल भाव से जाखड़ा हुआ। शल्य की गदा अंगारों की वर्षा कर रही थी वे दोनों समान योद्धा थे। गदायुद्ध में घायल हो दोनों ही पृथ्वी पर गिर पड़े। इसी समय कृतवर्मा तुरन्त शल्य के पास आपहुँचा, शल्य को छटपटाते देख, उसे अपने रथ पर विठाकर युद्धभूमि से बाहर लेगया: भीमसेन तो पलभर में फिर से खड़ा हो, विजय से शंख बजाने लगा। कौरव सैनिक भाग खड़े हुये। केवल कौरवपक्ष से वृषसेन ही ऐसा निकला, जिसने कौरव सेना को भागने से रोका। वृषसेन ने सैकड़ों सैनिक हाथी घोड़ों को मार गिराया। उसी नकुलपुत्र शतानीक ने वृषसेन पर आक्रमण किया। तब कर्ण के पुत्र ने शतानीक के धनुष को काटकर ध्वज को भी गिरा दिया। द्रौपदी के अन्य पुत्रों ने भाई की रक्षा में बाणवर्षा करके वृषसेन को ढक दिया। यह देख अश्वत्थामा आदि उन कौरवों पर टूट पड़े। पाण्डवों ने पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और सृंजय योद्धाओं के साथ अपने वीरों की रक्षा की। घनघोर युद्ध होने लगा। कौरवसेना को धीरज बंधाते द्रोण ने अपने सारथि से कहा सारथे ! तुम मुझे वहीं ले चलो जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े हैं। अर्जुन ने मेरी कृपा से ही बडे-बड़े अस्त्रों को प्राप्त किया है। यह सुन सारथि अश्वहृदय नामक मन्त्रों से अभिमन्त्रित रथ के द्वारा द्रोण को आगे ले चला। तब पाण्डव वीरों ने तथा करूष, मत्स्य, चेदि, सात्वत आदि के वीरों ने द्रोण को रोका। लाल घोड़ों वाले द्रोण ने पाण्डव सेना में घुस कर युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। धर्मराज ने द्रोणाचार्य को बींध डाला। द्रोण ने शिखण्डी, उत्तमौजा, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाचों पुत्रों और युधिष्ठिर को अपने बाणोंसे बींध डाला। द्रोण ज्योंही युधिष्ठिर को पकड़ने दौड़े कि राजा युगन्धर ने उन्हें रोक दिया। द्रोण ने युगन्धर को प्रहार से रथ से नीचे गिरा दिया, तब विराट, द्रुपद, केकय, सात्यकि, शिबि, पाञ्चाल, व्याघ्रदत्त, सिंहसेन आदि युधिष्ठिर की रक्षा में आगे आये और द्रोण को राह में रोक दिया। द्रोण ने सिंहसेन पर धावा बोला। द्रोण ने अपने भाले से व्याघ्रदत्त का मस्तक काट डाला। अब द्रोण युधिष्ठिर बहुत पास आगये. पाण्डवों में हाहाकार मच गया। उसी समय अर्जुन बहां आगये और कौरव सेना पर टूट पड़े। अर्जुन की बाण-वर्षा से दिशायें आकाश बाणमय हो उठा। सूर्य अस्त होगये थे, इसलिये द्रोण और दुर्योधन ने अपनी सेना को पीछे हटा लिया। अर्जुन ने भी अपनी सेना को हटा लिया।

द्रोण लज्जित से दुर्योधन से बोले—राजन् ! अर्जुन के रहते हुये सम्पूर्ण देवता भी युद्ध में युधिष्ठिर को पकड़ नहीं सकते हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण और अर्जुन मेरे लिये अजेय हैं। यदि अर्जुन किसी तरह दूर हटा दिये जांय तो युधिष्ठिर मेरे वश में आ सकते हैं। यह सुन त्रिगर्तराज सुशर्मा ने कहा—महाराज ! अर्जुन ने हमेशा हमलोगों का अपमान किया है। हमारी छाती जलती है। हम अर्जुन को युद्धस्थल से बाहर ले जायेंगे और मार डालेंगे। सुशर्मा के भाइयों सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु, सत्यकर्मा ने भी यही घोषणा की। अब प्रस्थलाधिपति सुशर्मा तीस हजार रथियों, मालव, तुण्डिकेर, मावेल्लक, ललित्थ, मद्रकगण और अपने भाइयों सहित युद्ध के लिये गया। दश हजार महारथियों ने उनका साथ दिया। उन्होंने अग्निदेव का पूजन, हवन, किया। कवच धारण किये। शरीर में घी लगाया 'मौर्वी' नामक तृण की मेखला बांधी। ब्राह्मणों को दक्षिणा बांट दी। वे पुत्रवान् थे। वे युद्ध से पुण्यलोकों में जाने के इच्छुक थे। उन्होंने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया दक्षिणा देकर आशीर्वाद प्राप्त किया। अग्निदेव के सामने इस प्रकार प्रतिज्ञा की—यदि हम अर्जुन

को युद्ध में मारे बिना लौट आयें या उनके बाणों से घायल होकर युद्ध से भाग आयें तो हमें पापमय लोक प्राप्त हों। और भी—जो व्रत का पालन न करने वाले, ब्रह्महत्यारे, मद्यपीने वाले, गुरुस्त्री-गामी, ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाले, राजा की दी हुई जीविका को छीनने वाले शरणागत को त्यागने वाले, याचक को मारने वाले, घर में आग लगाने वाले, गौवध करने वाले, दूसरों की बुराई में लगे. ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले, ऋतुकाल में भी अपनी स्त्री से समागम करने वाले, श्राद्ध के दिन मैथुन करने वाले, अपनी जाति छिपाने वाले, धरोहर को हड़पने वाले, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने वाले, नपुंसक के साथ युद्ध करने वाले, नीच पुरुषों से संग करने वाले, ईश्वर और परलोक पर विश्वान न करने वाले, अग्नि, माता, और पिता की सेवा त्यागने वाले, खेती को पैरों से रौंदने वाले, सूर्य की ओर मुँह करके मूत्र त्यागने वाले तथा पाप-परायण लोगों को जो नरक मिलते हैं, वे हमें मिलें। इस प्रकार वे संशप्तकगण अर्जुन को ललकारते हुये, दक्षिण दिशा की ओर खड़े होगये। यह देख अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्! संशप्तक मुझे ललकार रहे हैं, मैं अब रुक नहीं सकता। इनसे मैं लोहा लूं आप आज्ञा दीजिये। युधिष्ठिर ने कहा तात! द्रोण की प्रतिज्ञा तुम सुन चुके हो, जो उचित हो वही करो,। अर्जुन ने कहा—राजन्! पाञ्चालराजकुमार आदि आप की रक्षा करेंगे। इनके रहते द्रोण अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सकेंगे। यदि सत्यजित् मारा जाय तो जाप युद्धभूमि में न ठहरियेगा। यह सुन युधिष्ठिर ने अर्जुन को सहर्ष विदा किया। कौरवों ने अर्जुन की अनुपस्थिति से लाभ उठाने हेतु घमाशान युद्ध प्रारम्भ कर दिया। दोनों सेनायें भिड़ गयीं।

इसके बाद संशप्तक योद्धा रथों से सेना का चन्द्राकार व्यूह बनाकर खडे होगये। अर्जुन को देख गर्जना करने लगे। यह देख अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—देवकीनन्दन! देखिये इन मुमुर्षूओं को, ये हर्ष से उछल रहे हैं। अर्जुन ने त्रिगर्तों पर आक्रमण किया। उससे पहले अर्जुनने देवदत्त नामक शंख को बजाकर दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया। त्रिगर्त सेना शंख ध्वनि से ही स्तब्ध रह गयी। सैनिक बहरे होगये। घोड़े आँख फाड़ कर देखने लगे। अब संशप्तक एक साथ अर्जुन पर टूट पड़े। सुबाहु ने अर्जुन के किरीट पर आघात किया। अर्जुन ने भल्ल से सुबाहु के दस्ताने काट गिराये। पाँचों भाइयों ने दस-दस बाणों से अर्जुन को घायल कर दिया। अर्जुन ने सुधन्वा को धराशायी कर दिया। सेना में भगदड़ मच गयी। त्रिगर्तराज ने अपने महारथियों को धीरज बंधाया। सैनिक लौट आये।

यह देख अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हृषीकेश! हमारे घोड़ों को संशप्तकों की ओर बढ़ाइये। मालूम देता है ये जीते जी रणभूमि का त्याग नहीं करेंगे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वहाँ ही पहुंचाया जहाँ उसके जानकी इच्छा हुई। अर्जुन का रथ मण्डलाकार घूमता था। नारायणी सेना के गोपों ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया। अर्जुन ने गाण्डीव उठा लिया। उससे पहले उसने त्वाष्ट्र नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उससे सहस्रों रूप अलग-अलग प्रकट होने लगे। उस दिव्यास्त्र से परस्पर के आघात से क्षीण होने लगे। अब अर्जुन ने ललित्थ, मालव, मावेल्लक, त्रिगर्त, यौधेय सैनिकों को गहरी पीड़ा पहुँचायी। त्रिगर्तों को बाण वर्षा से श्रीकृष्ण भी अर्जुन को पुकारने लगे कि तुम कहां हो? तुम जीवित हो? अर्जुन ने वायव्यास्त्र से उस बाण वर्षा को नष्ट किया। वायु-वेग से युद्ध कर अर्जुन ने संशप्तकों को अधिकतर मार गिराया। इधर अर्जुन फँसे थे। उधर द्रोण ने युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया। यह युद्ध भी भयानक था।

द्रोण ने गरुड व्यूह की रचना कर युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर ने मण्डलार्ध-व्यूह से युद्ध किया। गरुड व्यूह में मुँह के स्थान पर द्रोण थे। शिरोभाग में भाइयों सहित दुर्योधन थे। कृप और कृतवर्मा नेत्र थे। भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, करकाश, कलिंग, सिंहल, पूर्व की ओर, आभीरक, दाशेरकगण. शक, यवन, काम्बोज आदि वीर हाथी घुड़-सवारों के साथ ग्रीवास्थान पर थे। भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त, वाल्हीक आदि दाहिने पार्श्व में थे। विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण बायें पार्श्व में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के आगे खड़े थे। पुच्छभाग में कलिंग, अम्बष्ठ, मगध आदि के साथ विकर्तन पुत्र कर्ण खड़ा था। हृदय स्थान में जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, भूरिश्रवा आदि वीर थे। मध्यभाग में हाथी पर राजा भगदत्त थे।

द्रोण की अजेय व्यूह-रचना को देख युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा—वीर! तुम ऐसा प्रयत्न करो कि मैं द्रोण के वश में न आसकूँ। ऐसा ही होगा, कहकर कबूतर के रंगवाले घोड़े रखने वाले द्रुपद ने बाणों का जाल-सा बिछाते हुये स्वयं द्रोण पर धावा बोला। धृष्टद्युम्न को सामने खड़ा देख द्रोण उदास होगये। दुर्मुख ने धृष्टद्युम्न को आगे बढ़ने से रोक दिया। दोनों में तुमुल युद्ध हुआ। द्रोण ने कौरव सेना को विशेष तहस नहस किया। मर्यादाशून्य मारकाट होने लगी। इस युद्ध में पिता ने पुत्र को, पुत्र ने पिता को मार डाला। ऐसे भयंकर युद्ध में द्रोण ने युधिष्ठिर पर धावा बोला। युधिष्ठिर ने भारी बाण वर्षा से द्रोण को रोक दिया। द्रोण धर्मराज को काबू में करना चाहते थे कि सत्यजित् ने द्रोण पर आक्रमण किया। द्रोण घायल होगये। उनका सारथि मूर्छित होगया। ध्वज कटकर गिर गया। द्रोण ने सत्वजित् के धनुष को काट डाला और उसे घायल कर दिया। सत्यजित् ने दूसरा धनुष ले द्रोण को घायल कर दिया। वृक ने द्रोण की छाती में साठ बाण मारे। द्रोण ने वेग-बाणों से वृक को मार डाला। द्रोण ने अर्धचन्द्राकार बाण द्वारा सत्यजित् का मस्तक काट डाला। पांचाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कौसलदेश के वीर द्रोण पर टूट पड़े। द्रोण ने उन वीरों को भी मार गिराया। विराट के छोटे भाई शतानीक द्रोण पर चढ़ आये। द्रोण ने क्षुर बाण से उसका मस्तक काट डाला। द्रोण की बाण वर्षा ने सबको मोहित कर दिया। युधिष्ठिर आदि सब वीर सब ओर से द्रोण पर टूट पड़े। सत्यवादी, विद्वान् बलवान् द्रोण ने रक्त की नदी बहा दी। शिखण्डीने पांच बाणों से द्रोण को बींध डाला। अन्य वीरों ने भी द्रोण को हताहत किया। द्रोण ने रथ सेना को लांघ कर दृढ़सेन को मार गिराया। राजाक्षेम को गिरा दिया। वसुदान को एक ही भल्ल से यमलोक भेज दिया। अब युधिष्ठिर द्रोण से दूर चले गये। द्रोण ने सात्यकि, चेकितान आदि वीरों को परास्त कर दिया। द्रोण की मार से पाँचाल, केकय, मत्स्य देश के सैनिक काँपने लगे।

चिन्तन-विन्दु—

१—जब समय तुम्हारे विरुद्ध हो तो सारस की तरह निष्कर्मण्यता का बहाना करो, लेकिन वक्त आये तो बाज की तरह तेजी के साथ झपट कर हमला करो।

१—जितनी ज्यादा बातों के लिये आदमी लज्जित होता है, उतना ही ज्यादा सम्मानित होता है।

गतांक से आगे—

श्रीकृष्णभक्ति साहित्य में वृन्दावन का स्वरूप

लेखक—श्रीराधामोहनदास गुप्त

संस्थापक/अध्यक्ष, स्वामी श्रीहरिदास शोध संस्थान,(कानपुर–१)

★

मधुवन, तालवन, कुमुदवन, काम्यवन, बहुलावन, भद्रवन, खदिरवन, महावन, लोहवन, विल्ववन, भाण्डीरवन तथा वृन्दावन। इन सभी वनों का विपुल माहात्म्य है। इस तथ्य का उल्लेख पुनः वृन्दावन खण्डमें भी हुआ है[२०]। अतः पुराणोंके अनुसार व्रज की समस्त भूमि गोलोकसे अवतरित दिव्य भूमि है। इसके रमणीकवन, वृन्दावन, गोवर्धन, पावन यमुना आदि सभी कुछ अलौकिक गुणों से विभूषित है। पुराणों में भी श्रीवृन्दावन को सब भगवद्धामों में मूर्धन्यधाम माना गया है। नित्य वृन्दावन ब्रह्माण्ड के ऊपर संस्थित है, अर्थात् ब्रह्माण्ड का भी मूर्धन्य शिरोभाग है। वह पूर्ण ब्रह्म के सुख ऐश्वर्य वाला, नित्य (विनाश रहित) आनन्दरूप और अव्यय है अर्थात् घटता बढ़ता नहीं सदा एक रस रहता है। इसी वृन्दावन के अंश के अंश से वैकुण्ठ आदि स्थान बने हैं। आदि शब्द से श्वेत-द्वीप, बद्रिकाश्रम, तपलोक, त्रिपाद विभूति, ब्रह्मरंध जानना चाहिए और वह स्वयं पृथ्वी पर विराज-मान है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने भी कहा है :—

वृन्दावन वैकुण्ठ को तोल्यौ तुलसीदास।
गरुऔ हो सो थिर रह्यो हरुऔ गयौ अकाश॥

वृन्दावन और वैकुण्ठ को एक साथ तौलने पर इसमें से जो हलका था वह वैकुण्ठ तो ऊपर आकाश में उठ गया और भारी वृन्दावन पृथ्वीपर रह गया। वृन्दावन तीन माने गये हैं। व्रजवृन्दावन यह चौरासी कोस का है। दूसरा नित्य वृन्दावन, यह वीस कोस का है। तीसरा निकुञ्ज वृन्दावन यह पांच कोस का है। इसी में ही श्रीप्रिया-प्रियतम की नित्यविहार स्थली की भी अनेक निकुञ्जें बनी हुई हैं। स्कन्दपुराण में गोवर्धन को वृन्दावन के अन्तर्गत बताया गया है।[२१] पद्मपुराण[२२] एवं वृहद् गौतमीय तन्त्र में इसकी परिधि पांच योजन की बताई गई है[२३]। यह उल्लेख वृन्दावन की

---

२०. गर्गसंहिता, श्रीगर्गाचार्य प्रणीत, वृन्दावनखण्ड, अध्याय २, श्लोक सं० ७, पृष्ठ सं० ७।

२१. अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरिः। यत्र तीर्थान्यनेकानि विष्णुदेवकृतानि च॥
—श्री श्री मथुरामाहात्म्यम्, श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः, श्लोक सं० ३७७, पृष्ठ सं० ७५
(स्कन्दपुराण, मथुरा खण्ड, श्रीमधुसूदनगोस्वामी रचित, श्रीवृन्दावन दर्पण में उद्धृत)

२२. योगिन्यस्तास्तु एवं हि मम देवाः परायणाः। पञ्चयोजनमेव हि वनं मे देवरूपकम्॥
—पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ७५, श्लोक सं० १०, पृष्ठ सं० ३२१।

२३. पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्। कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी॥
वृहद्गौतमीय तन्त्र से उद्धृत, श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः श्री श्रीमथुरामाहात्म्यम्, श्लोक सं० ३८५, पृष्ठ सं० ७७।

वृहत्तर सीमा की स्थापना करते हैं। वृन्दावन के उपासक सभी सम्प्रदायों के साहित्य में वृहत्तर वृन्दावन तथा वर्तमान वृन्दावन की स्थिति, दोनों की अलग-अलग परिधियां तथा रासस्थल वृन्दावन के यमुना से तीन ओर घिरे होने के उल्लेख हैं। स्वामी श्रीललितकिशोरीदेव चौरासी कोस के भीतर बीस कोस परिमाण के वृन्दावन तथा उसके अन्तर्गत एक योजन परिणाम के निजधाम निजवृन्दावन का उल्लेख करते हैं२४। श्रीशुक सम्प्रदाय (चरणदासी-सम्प्रदाय) के संस्थापक श्रीचरणदासजी ने अपने 'व्रजचरित्र' नामक ग्रन्थ में कहा है कि वृन्दावन बीस कोस के घेरे में है। उसके मध्य निज-वृन्दावन है जिसका आकार तिकोना तथा परिमाण एक योजन है२५। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के रसिक राज राजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज ने यमुना को वृन्दावन के पास कंकणाकार में बहता हुआ बताया है२६। कोई-कोई विद्वान् वृन्दावन को चौरासी कोस में फैला हुआ बताते हैं, परन्तु व्रज का विस्तार भी ८४ कोस बताया जाता है, अतः उनका आशय यही है कि सारा व्रज ही वृन्दावन है। वृन्दावन को जहां व्रज का एक भाग माना गया है, वहां सर्वत्र उसका पाँच योजन का उल्लेख मिलता है२७।

'वृहद् ब्रह्मसंहिता' में वृन्दावन को शोक, दु:ख, जरामरण से विमुक्त, क्रोध मात्सर्य और अहंकार से विहीन, गुणातीत मभक्ति स्वरूप माना गया है। वह वृन्दावन होने के कारण ही वृन्दावन है· वृन्दावन को गोलोक का गुह्य से गुह्य स्थल वर्णित किया गया है२८।

---

२४. निजधाम निजमहल कौ आवरन एक योजन श्रीवृन्दावन, ताकौ।
आवरन बीस कोस, श्रीवृन्दावन ताकौ आवरन चौरासीकोस-व्रज कौ॥
— स्वामी श्रीललितकिशोरीदेवजी रचित 'वचनिका सिद्धान्त' उपदेश संख्या ५, श्रीवृन्दावनस्थ टटिया संस्थान में सम्वत् १८०८ वि० की सुरक्षित हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

२५. बीस कोस के फेर में वृन्दावन कूँ जान। कुन्जगली अति सोहनी द्रुमवेली पहचान॥
× × × ×
तिहि मधि वृन्दावन महा, निज वृन्दावन जान। तिरकौनी बरनन कियो योजन है परवान॥
—श्रीभक्तिसागर के अन्तर्गत 'व्रजचरित', श्रीचरणदासजी रचित, दोहा सं० १८,२२, पृष्ठ स० ६।

२६. जय वृन्दावन नित्यविहार, श्रीराधापिय परम उदार।
जय सहचरि आदि रङ्गदेव्य, स्यामा-स्यामहि जिनके सेव्य॥
जय नव नित्यकुञ्ज सुखसार, जय जमुना कंकन आकार।
श्रीहरिप्रिया सकल सुखसार, सर्ववेद कौ सारोद्धार।
—श्रीहरिव्यासदेवाचार्य विरचित–'महावाणी' सिद्धान्त-सुख, पद सं० १, पृष्ठ सं० २८२।

२७. साधक जे जन एई स्थान निष्ठा करि। जे समे जे लीला कृष्णेर साधन जे करि॥
चौरासिकोस व्यापी वृन्दावन मण्डल। तार मध्ये संक्षेप कहिल मेई स्थल॥
श्रीरूप रघुनाथ पदे जार आस। वृन्दावन ध्यान एई कहे कृष्णदास॥
—श्रीकृष्णदास कविराज-'वृन्दावन-परिक्रमा' (बंगला)।

२८. अशोकं दु:खरहितं जरामरणवर्जितम्। अक्रोधनं मात्सर्यं भिन्नं निरहंकृतम्॥
गुणातीतं महद्धाम प्रेमभक्ति स्वरूपकम्। गुह्याद् गुह्यतमं गूढे गोलोके तत्प्रतिष्ठितम्॥
—वृहद् ब्रह्मसंहिता।

श्री श्रीचैतन्यमतानुयायी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती कृत—'श्रीवृन्दावन महिमामृत' के विविध शतकों में वृन्दावन का बहुत मोहक चित्रण हुआ है। वृन्दावन-माहात्म्य को जितनी विशदता और विस्तार के साथ इस ग्रन्थ में उद्घाटित किया गया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ उसे दिव्य प्रकाश का धाम कहा गया है। जो मानव मन को कोटि-कोटि विकारों से मुक्त करने की क्षमता रखता है। उसके प्रभाव से सांसारिक ऐषणाओं के प्रति सर्वथा अनाशक्ति हो जाती है। 'वृन्दावन-माहात्म्य' वर्णन में वृन्दावनवास की अनिवार्यता पर भी बल दिया गया है। वेदाज्ञा और गुरुजन आदेश भी यदि वृन्दावनवास के मार्ग में बाधक हों तो उसका अतिक्रमण भी विधेय है[२९]। हस्तगत वैंकुण्ठलोक की लक्ष्मी की तुलना में यदि वृन्दावन में तृणवत् रहने का भी सौभाग्य प्राप्त हो तो उस लक्ष्मी को भी त्याग देना हितकर है[३०]।

'वैष्णवभक्ति-साहित्य' में उक्त साक्ष्यों से वृन्दावन के स्वरूप पर प्रकाश नहीं पड़ता अपितु उसमें भावना परक वृन्दावन का ही उल्लेख है। श्रीयुगलकिशोर की प्रकट अप्रकट लीला के भेद से लीला स्थली वृन्दावन के भी दो रूप माने गये हैं एक इसी जगती का वृन्दावन जो प्रकट है और दूसरा अप्रकट-अव्यक्त वृन्दावन जो वैंकुण्ठ से भी श्रेष्ठ और सर्वोपरि है। प्रकट वृन्दावन गोलोक स्थित अव्यक्त दिव्यधाम वृन्दावन का ही रूप है[३१]। श्रीसरस्वती पाद ने अपने 'श्रीवृन्दावन महिमामृतम्' के प्रथम शतक में तीन वृन्दावनों का उल्लेख किया है :—

(१) गोष्ठ वृन्दावन जहाँ श्रीकृष्ण गौचारण करते हैं। (२) गोपियों का क्रीडास्थल वृन्दावन, जहाँ व्रजगोपिकाओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण रासविलास करते हैं। (३) तीसरा और दोनों से विलक्षण अत्यन्त आश्चर्यमय वृन्दावन वह कहलाता है, जहाँ श्रीराधारानी की निकुञ्जवाटी सुशोभित है। यह निकुञ्जवाटी उस आद्यभाव का प्रकट रूप है, जो अत्यन्त शुद्ध और पूर्ण है। सर्वथा स्वसुख-वासना शून्य होने के कारण वह विशुद्ध है और सर्वथा प्रवृद्ध होने के कारण पूर्ण है[३२]।

---

२९. न वेदाज्ञाभंगे कुरु भयमनेनापि वचनं, गुरूणां मन्येथाः प्रविश नहि लोकव्यवहृतौ।
कुटुम्बाद्यै दीने द्रव न कृपया नो भव सितो, ऽसकृत् स्नेहैः वृन्दावन मनु हठान्निःसर सखे॥
—श्रीवृन्दावनमहिमामृतम्, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, विरचितम्, प्रथम शतकम्,
श्लोक सं० ५२, पृष्ठ सं० २१।

३०. यदि वृन्दावन विन्दाम्ययि तृणतान्ते वनान्तेषु। न तदा वैकुण्ठलक्ष्मीमपि करमिलितां निजालये ललिताम्॥ —श्रीवृन्दावन महिमामृतम्, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, विरचितम्, चतुर्थ शतकम्,
श्लोक सं० ६०, पृष्ठ सं० ६८।

३१. भक्तकवि श्रीध्रुवदासः सिद्धांत और साहित्य, डा० शीलाग्रोवर, पृष्ठ सं० २०१-२०४।

३२. स्थूलं सूक्ष्मं कारणं ब्रह्मतुर्ये श्रीवैंकुण्ठद्वारकाजन्मभूमिः।
कृष्णस्याथो गोष्ठवृन्दावनन्तत् गोप्याक्रीडं धाम वृन्दावनान्तः॥
अत्याश्चर्या सर्वतोऽस्माद् विचित्रा श्रीमद्राधाकुँज-वाटी चकास्ति।
आद्योभावो यो विशुद्धोऽपि पूर्णस्तद्रूपा सा तादृशोन्मादि सर्वाः॥
—श्रीवृन्दावन महिमामृतम्, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचितम्, प्रथमशतकम्
श्लोक सं० ८, ९, पृष्ठ सं० ४।

इस निरूपण से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं -

(१) 'श्रीराधानिकुञ्जवाटी' वाला वृन्दावन, पुराणों में वर्णित और विविध सम्प्रदायों द्वारा स्वीकृत वृन्दावन के स्वरूप से विलक्षण स्वरूप वाला है।

(२) यह श्रीवृन्दावन मधुररस के स्थायीभाव रति का प्रकट रूप है।

प्रत्येक उपास्य तत्त्व के साथ उसके धाम का सम्बन्ध अनिवार्य है। 'राधावृन्दावने' वने इस न्याय से श्रीराधा वृन्दावन की अधिष्ठात्री हैं। वृन्दावन श्रीवन है। श्रीवृन्दावन के विना श्रीराधा का विहार-दर्शन, आराधन अन्यथा असम्भव है। श्रीवृन्दावन की रस महिमा भगवान् के लिए भी अगम्य है[३३]। श्रीवृन्दावनकी महिमा का भूरिश: गान आगम, पुराण एवं काव्य ग्रंथों में उपलब्ध है। श्रीराधा-वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त में प्रेम का प्रथम सहज रूप उसकी सहज सुन्दर आकृति श्रीवृन्दावन है। अतएव म के समस्त लक्षण वृन्दावन में घटित होते हैं। वृन्दावन अद्वयप्रेम की विशुद्ध परिणति है। वह नित्य नूतन एवं नित्य एक रस है और प्रेमधाम है। श्रीराधारानी अभिन्न रूप है, वन ही वन है।

---

३३. ईशोऽपि यस्य महिमामृतवारिराशेः पारं प्रयातुमनलम्व्यतदत्र कोऽन्यः ?
—श्रीमद्प्रबोधानन्द सरस्वती।

हे कृष्ण

हे कर्मयोगिन् !
तुमने हमें नाचने-गाने का नहीं,
गीता का पाठ पढ़ाया था;
परन्तु उसमें हमारा मन नहीं लगता !
तुमने हमें लूटने - खसोटने का नहीं,
त्याग का उपदेश सुनाया था;
परन्तु वह हमें नहीं सुहाता !
तुमने हमें
जीवन और मृत्यु के यथार्थ का बोध देकर,
अन्याय और शोषण के
प्रतिकार का मार्ग दिखाया था;
परन्तु हम उस पर नहीं चलते !
हम तुम्हारे बाल - रूप को,
गोद में उठाये घूम रहे हैं;
रसिक - शिरोमणि रूप को
हृदय से लगा कर चूम रहे हैं;
परन्तु विराट् रूप के सम्बन्ध में नहीं सोचते;
हम तुम्हारी नन्हीं सी मुरली
की धुन में मस्त हो रहे हैं,
परन्तु पाञ्चजन्य के स्वर को नहीं सुनते;
तुम्हारे माखन को चुराकर खाये जा रहे हैं;
परन्तु सुदर्शनचक्र की ओर नहीं देखते;
यह सब क्या हो रहा है ?
हे यशोवर्द्धन !
शायद पिछली पाँच सहस्र वर्षों से हम स्वयं को
छलते चले आ रहे हैं !!

रचयिता—कविवर राजेशदीक्षित
महाविद्या कॉलौनी (मथुरा)

[गीतकादम्बिनी से साभार]

卐

श्रीपुरुषोत्तम मास माहात्म्य

पं० केशवदेव शास्त्री, [सम्पादक–'अनन्त-सन्देश]

एक वार नैमिषारण्य पवित्र क्षेत्र में सहस्त्रों ऋषियों ने एकत्र हो लोकोपकार की शुभ दृष्टि से श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास जी के ज्ञानी शिष्य एवं सभी प्राणियों के हित में लगे रहने वाले- श्रीसूत जी से कहा—हे महाभागवत सूतजी आप कृपाकर हमें ऐसी कथायें सुनाइये, जिनके श्रवण मात्र से श्रीहरि की लीआओं का रस प्राप्त हो और संसार सागर में डूबने वाले को भगवद्धाम प्राप्त करा सकें।

सूतजी बोले—ऋषियो ! मैं पुष्कर, यमुना, गंगा, काशी, वेणी, कृष्णा, गण्डकी, धेनुमति, गोदावरी, कावेरी, आदि तीर्थों में स्नान तर्पण करता हुआ बदरीधाम गया, वहाँ भगवान् नारायण और नर, देवर्षिनारद आदि के दर्शन कर हस्तिनापुर पहुंचा, वहाँ राजा परीक्षित ऋषियों के साथ गंगाजी जा रहे थे, उसी समय श्रीशुकदेवजी आगये। उनकी आठ वर्ष की आयु थी, सिंह के समान कण्ठ, चिकने घुँघराले केश, दीप्तकान्ति, अवधूतवेश थे, सब ऋषियों ने उनका पूजन किया, ऊँचे आसन पर बैठाया।

ऋषियों के आग्रह पर सूतजी बोले—एक समय नारदजी हरिगुण गाते नारायण के पास पहुँचे। प्रार्थना कर हाथ जोड़े, प्रश्न किया प्रभो ! मोह में पड़े संसारी गृहस्थी जीवों का हितकरने वाला सरल उपाय विचार कर आप कृपाकर बताइये। नारायण बोले—नारदजी ! अब मैं भगवान् श्रीकृष्ण की पवित्र कथा सुनाता हूं। नारदजी ने पूछा प्रभो ! इस पुरुषोत्तममास का माहात्म्य उसके देवता, ऋषि कौन हैं ? नारायण ने कहा नारद ! पुरुषोत्तम मास के स्वामी पुरुषोत्तम हैं। इसका व्रत करने से भगवात् प्रसन्न होते हैं। भगवन् ! चैत्रादि मास तो सुने, इस पुरुषोत्तम मास में क्या करना चाहिये और यह क्या है ? भगवान् बोले—एक समय युधिष्ठिर जूये में सब कुछ हार गये। द्रोपदी को दुःशासन का अपमान सहना पड़ा। श्रीकृष्ण ने उसकी रक्षा की। अब मैं अर्जुन और श्रीकृष्ण संवाद तुम्हें बताता हूं। नारद ! सावधान होकर सुनो।

श्रीकृष्ण ने नारद से कहा—चैत्र आदि मास, पक्ष, अयन, वर्ष सब अपने गुणों से पूजे जाते हैं। एकवार अधिक मास आया। इसमें संक्रान्ति नहीं होती, यह निन्दित होने से इसे लोग मलमास कहने लगे। वह रोता हुआ वैकुण्ठ गया, वहाँ रोता हुआ हाथ जोड़कर बोला—हे नाथ ! मैं मलमास सबसे तिरस्कृत हूं। मेरा उद्धार करिये। मैं आपकी शरण आया हूँ। वैकुण्ठनाथ ने उसे गोलोक धाम में श्रीकृष्ण ने पास भेजा। उसने श्रीकृष्ण को प्रणाम कर अपनी दीनता बता दी। श्रीकृष्ण ने कहा तुम चिन्ता न करो, तुम्हें मैं अपने जैसा बनाऊँगा। अब तुम्हें मलमास न कहकर लोग श्रीपुरुषोत्तम मास कहेंगे। इस के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मैं मास भर में भक्तों की इच्छा पूरी करूँगा। इस मास में किया दान, स्नान, देवार्चन, व्रत, मन्त्रजप यज्ञ करोड़ गुना होगा। ब्राह्मणों को सादर भोजन कराने वाला गोलोकधाम प्राप्त करता है।

इस मास में देवी द्रौपदी की कथा सुनना पुण्यप्रद है। पूर्वजन्म में द्रौपदी मेधावी ऋषि की प्यारी पुत्री थी। असमय में पिता के मर जाने पर पुत्री ने अपने पिता का दाह संस्कार किया। वह अनाथ रहने लगी। भाग्य से क्रोधी मुनि दुर्वासा वहाँ आये। ये ऋषि सती अनुसूया के गर्भ से पैदा हुये थे। बालिका ने ऋषि के चरणों में प्रणाम किया और बोली ऋषे! मैं अनाथ हूं, मेरा उद्धार करिये। दुर्वासा बोले-आज से तीसरा मास पुरुषोत्तम है। उसमें किया गया पुण्यकार्य अनन्त-फल देने वाला होता है। तू भगवान् पुरुषोत्तम की पूजा आराधना कर। तेरा सम्पूर्ण क्लेश शान्त होजायगा। बाला बोली-ऋषे! यह पुरुषोत्तम कैसे श्रेष्ठ है? बस इतना कहनाथा कि दुर्वासा नाराज हो यह कहते कि तू ने पुरुषोत्तम की अवमानना की है, इससे कष्ट उठाना पड़ेगा और चले गये। कन्या कान्तिहीन होगयी।

अब वह भगवान् शंकर की आराधना करने में लगी। आशुतोष ने दर्शन दिये। वर मांगो बोले! बाला ने 'पतिदो' यह पांच बार कहा। शंकर जी ने कहा तूने पाँचवार पति मांगा, वही होगा। बाला घबरा उठी, नाथ! यह लोक विरुद्ध अनर्थकारी है। भोलानाथ ने कहा इस जन्म में नहीं अगले जन्म में ऐसा होगा। तू अयोनिजा होगी। तूने पुरुषोत्तम मास में तप किया है।

समय आने पर बाला का शरीर छूट गया। उस समय राजा द्रुपद ने यज्ञ किया। यज्ञकुण्ड से सोने के समान एक कन्या निकली। यही द्रौपदी नाम से प्रसिद्ध हुई। स्वयंवर में मत्स्य वेधकर अर्जुन को मिली। अर्जुन ने माता कुन्ती से कहा-हम एक अच्छी वस्तु लाये हैं। मा ने बिना देखे ही कह दिया पाँचों बांट लो। व्यासजी ने सबको समझाकर द्रौपदी को पांचों पाण्डवों की पत्नी वनाया। पाण्डवों ने पुरुषोत्तममास में भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की, तब श्रीकृष्ण कृपा ने उन्हें राज्य की प्राप्ति हुई। दृढ़धन्वा को इसीके सेवन से महालक्ष्मी, पुत्र, पौत्र, सुख प्राप्त हुआ। महर्षि कर्दम ने कपिलदेव को प्राप्त किया। सुदेव ने पुत्र वियोग में एकमास तक जल भी ग्रहण नहीं किया। यह मास पुरुषोत्तम मास था। भगवान् के दर्शन प्राप्त हुये। भगवान् ने कहा सुदेव! तुम धन्य हो। तुम्हारे पुत्र की आयु दस हजार वर्ष की होगी। दूसरे जन्म में दृढ़धन्वा नामक राजा हुआ, गौतमी पटरानी हुई। तुम्हारी आयु दशहजार वर्ष होगी। जब तुम पुरुषोत्तम को भूलजाओगे तब वह तुम्हारा पुत्र बन में तोता बन कर वटवृक्ष पर बैठा तुम्हें बोध करायेगा। तब तू अन्न-जल त्यागकर देगा। वाल्मीकि मुनि के बोध कराने पर स्त्री सहित श्रीहरिके पद को प्राप्त करेगा।

श्रीपुरुषोत्तम मास में क्या करें—ब्राह्ममुहूर्त में उठे। श्रीहरि का चिन्तन करे। गुरुजनों का स्मरण करे। मलमूत्रादि त्यागकर स्नानादि से अन्तर-बाह्य शुद्ध होजाय। शुद्धवस्त्र धारण करे। शिखाबन्धन कर पूर्वमुख आसन पर बैठ ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे, सन्ध्यावन्दन, सूर्यार्घ्य, गायत्री जप करे। भूमि में गोवर से लीपकर चावलों से अष्टदल कमल बनायें, उस पर कलश स्थापित कर उसमें जल भरे, पंचपल्लव नारियल रखे। उसमें देवपूजन, तीर्थावाहन आदि पूजन करे। एक तावें के पात्र में श्रीराधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित कर षोडशोपचार से पूजन करे, आरती करे, वन्दन करे, साष्टाङ्ग प्रणाम करे। इतना यदि नहीं किया तो उसका जन्म व्यर्थ ही गया, समझो। देहरूपीवृक्ष का सनातन फल धर्म ही है।

नियम—शरीर, मन, वाणी से पवित्र रहे। हबिष्य अन्न भोजन करे। फल, दूध, खाकर रहे तो उत्तम। ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। भूमिपर चटाई बिछाकर शयन करे। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर हरि-गुरु स्मरण करे। मास, शहद, बेर राजमा, राई, तेल, गुड़, खटाई दूषित अन्न,

पराया अन्न न खाये। देब, वेद, ब्राह्मण, गुरु, गौ. राजा और सन्तों की निन्दा न करे। गौ का पूजन करे। पत्तल पर प्रसाद पावे। चौथे प्रहर में एकबार प्रसाद ले तो श्रेष्ठ है। श्रीमद् भागवत जी की कथा श्रवण करे। सहस्र तुलसीदल से श्रीहरि की अर्चना करे। शालग्राम पर अर्चना करे।

सौभाग्यनगर में राजा चित्रबाहु उसकी पत्नी चन्द्रकला दोनों श्रीहरि के अनन्य भक्त थे। एकबारअगस्त्य मुनि को आया देख पूर्ण सत्कारके साथ अपना राज्य उन्हें भेंट करनेका आग्रह राजाने किया। वैष्णव को दिया दान करोड़ गुना फलदायक होता है। मुनि ने राजा को ही राज्य लौटा कर उसे चलाने का आदेश दिया। मुनि ने कहा--तू पूर्वजन्म में मणिग्रीव नामक हत्यारा शूद्र था। तेरी पत्नी पतिव्रता थी। तू सबसे तिरस्कार पाकर वन में चला गया। वहाँ एक ब्राह्मण भूख से बेहोश मरणासन्न था। तू ने उसे उठाया, अपने निवास पर ले आया। वह स्वस्थ होगया। उसने श्रीहरि का पूजन किवा। मणिग्रीव ने अनेक फल लाकर दिये, उसने परिचय पूछा। मणिग्रीव ने अपने को बान्धबों से त्यागा 'शूद्र' बताया। भगवान् का आराधन हुआ। तब शूद्र ने दरिद्रता से उबरने का वर मांगा। उग्रदेव ब्राह्मण ने कहा–पुरुषोत्तम मास में दीपदान करने से तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। इसके प्रताप से बांझ का बांझपन हटाने वाला है। अगस्त्य मुनि चित्रबाहु की पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर और आशीष देकर चले गये।

उद्यापन विधि—श्रीपुरुषोत्तम मास में कृष्णपक्ष चौदस, नवमी या अष्टमी तिथियों में उद्यापन करना चाहिये। प्रातः तीस सदाचारी ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे। पांच या सात भी कर सकते हैं सर्वतौभद्र मण्डल की रचना कर चार कलश स्थापित करे। उन पर नारियल वस्त्र यत्रोपवीत रखे। चारों कलशों में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध की स्थापना कर पूजन करे। प्रधान लक्ष्मी पुरुषोत्तम भगवान् को मध्य में शोडषोपचार से पूजन करे। चतुर्व्यूह का जप करावे। अखण्ड दीप जलाये। आरती पुष्पाञ्जलि, साष्टांग प्रणाम। ब्राह्मणों (चार) को अंगूठी वस्त्र प्रदान करे। श्रीमद् भागवत जी ग्रन्थ का दान सर्वश्रेष्ठ है। कांसे के पात्र में तीस माल पुवे रख उसे कांसे के पात्र से ढंक, वस्त्र, खण्ड में बाँधकर दक्षिणा सहित किसी सुयोग्य ब्राह्मण को दान करे। प्रार्थना करे--हे श्रीकृष्ण मेरी सभी कामनाओं को पूर्णकीजिये। ब्राह्मण को उसकी पत्नी सहित भोजन कराये, उसे यथाशक्ति वस्त्रादि सहित दक्षिणा प्रदान करे। ऐसा करने से दारिद्रच दुःख नष्ट होता है। इस मास में वस्त्र सहित घट दान का बड़ा महत्व है। दोनों द्वादशी व्रत करने का भी महापुण्य है। इस मास में ब्रतानुष्ठान करने वाले वानर भी तर जाते हैं। नर की तो बात ही क्या।

हर दिल में है भगवान्

जिस पर यह दिल फिदा है दिलवर वो है निराला।
हर दिल अजीज भी है, हर दिल का है उजाला॥
क्या है वो, क्या नहीं है, झगड़ा ये दूर हो जब।
होता है तब वो जाहिर, परदे में छिपने वाला॥
खम्भे से, मूर्ति से, जल सिन्धु से, जमी से।
पलभर में निकल आया, जिसने जहां निकाला॥
जर्रों में पहाड़ों में कतरों में, बादलों में।
अदना है 'बिन्दु' से भी, है सिन्धु से भी आला॥

[गो० बिन्दुजो]

मैं क्या करूँ

लेखक—पं० श्रीछगनलाल शास्त्री, सीकर (राज०)

卐

कितने ही ऊहापोह शंकायें होती हैं जिनका उत्तर मनचाहा मिल गया कि मानव कृतकृत्य होजाता है। शंकाओं की कोई कमी नहीं।

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानं च भूतले।

एक यह भी शंका है कि—मैं क्या करूँ। शिष्य गुरु से पूछता है मैं क्या करूँ, भृत्य अपने स्वामी से पूछता है मैं क्या करूँ, पुत्र पिता से, स्त्री अपने पति से, भक्त भगवान् से पूछता है कि भगवन्! मैं तुम्हारी माया से भ्रान्त हूं, पथभ्रष्ट हूं, किंकर्तव्यमूढ़ हूं, मुझे राह बताइये मैं क्या करूँ।

वैयाकरणी गुरुजी से पूछता है तो गुरुजी कहते हैं देखो—

वाक्यार्थबुद्धौ पदार्थबुद्धेः कारणता।

समस्त वाक्य को समझने के लिये पद पदार्थों को जानना बहुत ही आवश्यक होता है, अतः इस वाक्य के अर्थ को तुम जब ही समझ पावोगे कि प्रथम मैं क्या हूं? क्या शब्द क्या है, फिर करूँ क्या है? इन तीनों के अर्थ को पृथक् पृथक् जब तक नहीं जानलोगे शंका का समाधान नहीं हो सकता। क्या करे बेचारा, भोला-भाला शिष्य ऐसे गहन अर्थ को ग्रहण करने की बुद्धि कहाँ से लाये, चुप होकर बैठ गया।

न्यायवाला अपने गुरुजी के पास गया और प्रश्न किया गुरुजी! मैं क्या करूँ? तो उत्तर मिला—

आकांक्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः।

वाक्यार्थ को जानने के लिये आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि, इन तीनों की परम आवश्यकता होती है। जब तक तीनों को पृथक् पृथक् नहीं समझलोगे, समस्त वाक्य नहीं समझ पाओगे। मैं केवल एक ही वाक्य से कुछ नहीं समझोगे क्यासे जो शंका उत्पन्न होती है उसे भी समझो और करूँ क्रिया का बोध सम्यक् समझो, फिर इन तीनों को मिलाकर जो अर्थ होता है उससे इस वाक्य का अर्थ समझ में आयेगा। कुछ समझ में नहीं आरहा है कि यह शंका का समाधान है या शंका पर शंका है क्या किया जावे?

वेद वाला अपने गुरुजी से पूछता है तो उत्तर मिलता है—

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

विना ज्ञान (जानकारी) के मुक्ति (छुटकारा) नहीं मिल सकती। ज्ञान यहाँ "ज्ञा–अवबोधने" धातुसे "ज्ञाजनो र्जा" ज आदेश होने पर जानाति बनता है। अब बात वह ही आगई कि जबतक जानेगा नहीं तो करेगा क्या?

यह शंका केवल मानव के लिये ही है। ऐसी बात भी नहीं है, इसने बड़े-बड़े ज्ञानी मानी देवताओं तक को हिला दिया है। भगवान् के पूर्ण कृपापात्र भी इससे बच नहीं पाये—

यं यं स्पृशति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा।
स्थावरा स्तेऽपि मुच्यन्ते किं पुनर्बान्धवाजनाः ।।

भगवान् जिसको अपने हाथ से स्पर्श कर लेते हैं या जिसको अपनी आँखों से देख लेते हैं, ऐसे स्थावर (वृक्षादि) भी मुक्त होजाते हैं, फिर अपने बान्धवों का तो कहना ही क्या? परन्तु सोते, जागते, चलते, फिरते, खाते, पीते हर समय साथ में रहने वाले उद्धव को भी इस शंका ने नहीं छोड़ा। जब भगवान् स्वधाम पधारने लगे तो व्याकुल हो हाथजोड़ बोला भगवन्! मैं क्या करूँ, भगवान् ने आदेश दिया उद्धव! बद्रिकाश्रम चले जाओ, भजन करो।

पूर्णब्रह्म परमात्मा ने ब्रह्मा को सृष्टिसृजनार्थ आदेश दिया तो उसके सामने भी यह ही प्रश्न आया "मैं क्या करूँ" सृष्टि निर्माणार्थं मुझे क्या करना चाहिये? तो भगवान् ने विधाता को तप करने का आदेश दिया।

सरस्वती के तट पर समासीन किंकर्तव्यमूढ़ चिन्ताकुल श्रीव्यास जी ने भी नारद से यह ही प्रश्न किया था—

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे।
यन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ।। भा० १।५।५

हे नारद! आप जो कुछ कह रहे हो वे सभी बातें यथार्थ हैं, ये सभी बातें होंने पर भी मेरे हृदय में शान्ति नहीं, बताइये—मैं क्या करूँ। आप तो ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं इसका कारण आप ही बताइये।

महाभारत के समय वीरवर अर्जुन ने विचारा मेरे परमप्रिय मित्र स्वयं भगवान् और मैं महाशक्तिशाली हूँ, युद्ध में मेरी समानता कौन कर सकता है। "सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत" हे भगवन् दोनों सेनाजों के बीच मेरा रथ खड़ा करदो मैं देखूँ—

"कैं र्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे'। मैं देखूँ तो सही पहले मुझे किससे युद्ध करना है,। अपने ही बान्धवों को देख व्यामोहित अर्जुन के सामने भी यही प्रश्न आया कि भगवन्—'मैं क्या करूँ।'

यच्छ्रेयः स्यान् निश्चितं ब्रूहि तन्मे। शिस्यस्तेऽहं साधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

हे भगवन् मरने को तैयार हुये अपने बान्धवों को देख मैं बड़ा ही दुःखी हूँ आप ही निश्चय करके बताइये मैं क्या करूँ, मैं आपकी शरण में हूं, आपका शिष्य हूं। "कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्" श्रीकृष्ण तो समस्त विश्व के गुरु हैं। जब उनकी शरणागति प्राप्त करली और सर्वस्व उनके चरणों में लगा दिया तो भला प्रश्न कब बाकी रहने वाला है।

भगवान् ने कहा देखो अर्जुन। तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे सामने है, तुम्हारे प्रश्न के तीन वाक्य हैं और क्या फिर करूँ तो तुम सबसे पहले मैं को समझो, यदि मैं तुम्हारे समझ में आगया तो समझलो शेष सभी समझ में आजायेगा।

प्रथम मैं कर्ता का प्रश्न और करूँ क्रिया है। मैं कर्ता यदि पक्षी है तो तद्वत् व्यवहार करो।

मैं यदि पशु है तो पशु जैसा व्यवहार करो और मैं यदि मनुष्य है तो मनुष्यता का व्यवहार करो बोलो तुम कौन हो ? भगवन् मैं मनुष्य योनि में हूं, भगवान् ने कहा वास्तव में मनुष्य हो तो तुम में मनुष्यता आना अनिवार्य है, आकृति में मनुष्य और कर्म में मानवता नहीं तो समझो पशु-पक्षियों से भी गये बीते तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं और मानव जाति में भी किस वरण में हो समझो, अर्जुन ने कहा भगवान् मैं मनुष्य जाति में क्षत्रियवरण का हूँ ।

भगवान् ने कहा बस इस बात को समझ गये हो कि मैं क्षत्रिय हूँ तो—

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियः पार्थ ! लभन्ते युद्धमिदृशम् ।। गीता २।३२

क्षत्रिय अनावृतस्वर्ग द्वार होने पर भी वहाँ जाना पसन्द नहीं करने यदि उनको युद्ध का द्वार मिल जाता है । क्षत्रियों का धर्म है कि वे अनाचार दुराचार, भ्रष्टाचार के साथ लोहा लें । सामर्थ्य होते हुये यदि जाति, ग्राम, देश एवं राष्ट्र का भला नहीं किया तो वह क्या मानव ? अतः इन पर यदि किसी प्रकार की विपत्ति आती है तो अपने प्राणों की आहूती दे दो । केवल अपने पेट को पालना मानवता नहीं, अब तुम क्या को भी समझ गये होंगे कि क्या यह मानव का कर्म है—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

अपने अपने कर्म में लगे रहने से ही मानवता की सिद्धि है, कर्मभ्रष्ट मानव पतित होता है और पतित को नरक की प्राप्ति होती है । भगवान् ने अर्जुन को ज्ञानयोग, कर्मयोग सभी को समझागा, अन्ततोगत्वा अर्जुन समझ गया कि वास्तव में मुझे क्या करना है । मैं को भलीभाँति समझ गया, क्या कर्म करना उसके सामने था ही । अब तो अर्जुन को ज्ञान हो गया था, हाथजोड़ कर कहनें लगा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ! ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव । गीता १८।७३

हे भगवन् ! अब मेरा मोह नष्ट होगया (मैं क्या करूँ), मैं समझ गया मुझे अपने-पन की स्मृति हो आई है । हे अच्युत आपकी कृपा से मेरा सन्देह दूर होगया । अब मैं आपके आदेशानुसार कार्य करूँगा ।

★

चाणक्य-सूक्तयः

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचिताज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते, चत्वारः सहजा गुणाः ।।

दानशीलता, प्रिय भाषण, धीरता और औचित्य का ज्ञान—ये चारों अभ्यास से नहीं मिलते । ये गुण स्वाभाविक होते हैं ।

दुष्टा भार्या, शठं मित्रं, भृत्यचोत्तरदायकः ।
ससर्पे च गृहे वासो, मृत्युरेव न संशयः ।।

दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उद्दण्ड नौकर और साँपवाले घर में निवास—इन से एक एक निःसन्देह मृत्यु ही है ।

क्षीर सागर कहाँ है ?

लेखक—पं० श्रीबजरंग प्रसादजी, रामायणी

[इस निबन्ध का विद्वान मनीषी परीक्षण कर अपनी सम्मति एक कार्ड द्वारा प्रेषित करने की कृपा करेंगे । तीन पेज तक क्षीरसागर का नाम तक नहीं आया है ।]

卐

लक्ष्मीलालितपादपङ्कजयुगं, भोगिन्द्रभोगासनम्,
क्षीरोदार्णवविन्दुभिः परिवृतं, कारुण्यकल्पैः सदा ।
नाभ्युद्भूत कुशेशरान्तरखिलं स्रष्टारमुदभाव्यनि,
र्व्याजनन्दितविश्वमाद्यमनधं, वन्दे मुकुन्दं प्रभुम् ।।

जिनके युगल चरणारबिन्दों में लक्ष्मीजी सदैव सेवारत रहा करती हैं, अनन्त शेषनाग ही जिनका शैय्यासन है, क्षीर सागर की उत्ताल तरंगों से निकली हुई श्वेत विन्दुओं से सुशोभित शरीर की सुन्दरता भक्तजनों पर करुणा वर्षाती रहती हैं जिनकी नाभि से उद्भूत कमल से जगत सृष्टा ब्रह्माजी प्रगट हुए हैं । अपने इस स्वरूप से विश्व को आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु की हम वन्दना करते हैं । भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं यह कथा शास्त्र और लोक प्रसिद्ध है यह सुनकर स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठ जाता है कि क्षीर सागर कहां है ? आज भुवन कोष(भूगोल)के माध्यम से सारी पृथ्वी नपी तुलीसी नक्शे में देखी जाती है ।संसार में जितने भी समुद्र झील हैं सबका स्थान व नाम की पूरी जानकारी प्राप्त है, किन्तु क्षीर सागर का पता उससे भी नही चलता, तो यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्षीर सागर कहाँ और कैसा है, जिसमें भगवान् बिष्णु निवास करते हैं ।

यह जिज्ञासा एक विद्वान् के द्वारा अनन्त-सन्देश के जनवरी १९९३ के अंक ६ में प्रकाशित हुई, श्रीरंगनाथ के ब्रह्मोत्सव के समय अयोजित की गई श्रीवैष्णव गोष्ठी में भी पत्र के सम्पाक महोदय ने भी इस प्रश्न को दोहराया । इस कारण इस विषय पर लेख लिखने की इच्छा जाग्रत हुई, जो प्रश्न कर्ता की इच्छा के अनुसार शास्त्रीय प्रमाणों पर आधारित है ।

इस विषय का पूर्णतया विश्लेषण इतना विस्तृत हो सकता है कि उसका पूर्णतया समाधान छोटे से लेख में कठिन है । यह लेख विद्वानों की जिज्ञासा पूर्ति के लिए सांकेतिक दिग्दर्शन मात्र है ।

सबसे पहले यह विचार करना है कि हमारा जितना भी जगत् व जागतिक वस्तुएं या उसके निर्माता भगवान् ये सब त्रिपर्वा हैं जैसे भूः भुवः स्वः तीन लोक, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीन देव स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन प्रकार के शरीर इस प्रकार सारा सांसारिक वृत्त तीन भागों में विभक्त है । सृष्टि के आदि में सबसे पहले जब विराट की उत्पत्ति हुई तो उनके भी तीन ही स्वरूप बतलाएं हैं ।

अद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्राम विभाव्यते,
साध्यात्मः साधिदेवश्च साधिभूत इति त्रिद्या ।। श्रीमद्भागवत ३।६।८।९

विराट स्वरूप भगवान् का आदि अवतार है सम्पूर्ण संसार इसी से उत्पन्न होता है यह आधिदै-

विक, आध्यात्मिक आधिभौतिक रूप से तीन प्रकार का है। वेदों में तो पृथ्वी जल आदि सब को ही त्रिवृत्त बतलाया है-

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथ्वी स्त्रीन्तक्षराणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोम त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा विवृतां विवृद्भिः ॥१
त्रीन्नाकान् त्रीन् समुद्रान् त्रीन् ब्रह्माँ स्त्रीन् विष्टपान्।
त्रीन् मातविश्वस्त्रीन् सूर्य्यान् गोप्त्रीन् कल्पयामि ते ॥२

अथर्ववेद संहिता १।२७।३, ४

इन मंत्रो का सारांश है कि संसार में जो भी कुछ है वह सब तीन विभागों में विभक्त है जो व्यक्ति त्रिगुणात्मक सृष्टि के रहस्य से परिचित है वह ही इनके भेदों को पहिचान सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का वचन है—

त्रिभिर्गुणमयै र्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

गीता

गुणों के कार्मरूप (सात्विक राजस तामस) इन तीनों प्रकार के भावों से यह संसार मोहित हो रहा है। इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को तत्व से नहीं जानता।

इन प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है कि सारा जगत् त्रिविध भावों से ओत प्रोत है। जिसे इन तीनों भावों की पहिचान है वह संसार व इसके रचयिता भगवान को सही रूप से जान सकता है। इस कारण क्षीर सागर के भी आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक तीन रूप हैं क्रम से इनका वर्णन देखिए—

आधिदैविक क्षीरसागर–संसार की सारी वस्तुओं का मूल बीज आकाश है। इसकी जानकारी को ही आधिदैविक ज्ञान कहते हैं। भगवद् गीता में इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वस्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

गीता १५।१

आदिपुरुष नारायण ही नित्य और अनन्त तथा सबके आधार होने के कारण सबसे ऊपर नित्यधाम में अव्यक्त रूप से विराजमान है, इसलिए ऊर्ध्व नाम से कहे जाते हैं। इस संसार के ये मूल कारण हैं, इसलिए यह संसार ऊर्ध्व मूल कहा जाता है। इसे जो पुरुष जानता है वह ही पूरा जानकार है। यजुर्वेदोक्त पुरुषसूक्त में भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है—

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्नृदिवि।

पुरुषसूक्त ३

समस्त दृश्यमान प्रपंच से परमपुरुष अति उत्तम है और सम्पूर्ण विश्व के प्राणी समूह उस परमपुरुष का एक पाद है और अमृतरूप त्रिपादों से जरामरण रहित परमव्योम (परमपद) में स्थित रहता है परात्पर, अव्यय, अक्षर, क्षर में ब्रह्म के चार पाद हैं। उनमें परात्पर, अव्यय, अक्षर ये तीन पाद त्रिपाद विभूति कहलाते हैं तथा क्षर नाम चतुर्थपाद सारा व्यक्त संसार है (क्षरः सर्वाणि भूतानि) भगवद् गीता।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहा भवत्पुनः।

त्रिपाद परात्पर, अव्यय, अक्षर, पुरुषरूप भगवान् नारायण प्रकृति मण्डल से ऊपर परम व्योम में स्थित हैं तथा क्षर नाम के चतुर्थ पाद से सारे चर अचर संसार के उत्पादक हैं उक्त मंत्रों से सिद्ध है। कि परमात्मा की नित्य स्थिति त्रिपाद् विभूति है और यह संसार लीला विभूति है। सूर्य से ऊपर के लोक त्रिपाद् विभूति तथा बीच के लीला विभूति हैं ऐसा वैदिक ग्रन्थों से जाना जाता है—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्न मृतं मर्त्यञ्च यजु० सं० ३३।४३

उक्त मंत्र सूर्य पूजा का परिचायक है इसमें (अमृत मर्त्यञ्च) शब्द सिद्ध करता है कि सूर्य अमृत और मृत्युमय है। आधा भाग अमृत लोक व आधा भाग मृत्यु लोक में होने से अमृत,मृत्यु लोक में होने से अमृत मृत्यु दोनों पर्वों का तेजोमय पिण्ड है। गायत्री मन्त्र में सप्त व्याहृति रूप भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं इन सात लोकों में भूर्भुवः स्वः ये तीन लोक मृत्यु कक्षा में तथा मह जन तप और सत्य ये चार लोक अमृत कक्षा में माने जाते हैं।

प्रत्योहन्न् मृत्यु ममृतेन साकम्।　　अथर्ववेद ५.२८

अनन्तरं मृत्योरमृतम् मर्त्त्याविभृतम् महितम्।　　(शतपथ ब्राह्मण)

ऊर्द्ध हवै प्रजायते रात्मनो मर्त्यं मासीदर्धममृतम्।

इन प्रमाणों के अनुसार सूर्य मृत्यु एवं अमृत उभयविभूति कहा जाता है। और भूर्भुवः स्वः इन तीनों लोकों की समृष्टि को रोदसी त्रिलोकी कहते हैं।

इस त्रिलोकी के ऊपर जो चार लोक हैं वे क्रन्दसी और संयती के विभागों में आते हैं। इस प्रकार भूः (पृथ्वी) भुवः आकाश स्वः (सूर्य) के बीच का आकाश रोदसी त्रिलोकी एवं महः जन और इनके बीच का भुवः आकाश यह क्रन्दसी त्रिलोकी तथा तप और सत्य तथा बीच का भुवः (आकाश) संयती त्रिलोकी कहलाती है। रोदसी इन्द्रत्रिलोकी क्रन्दसी विष्णुत्रिलोकी और संयती ब्रह्मा त्रिलोकी है इनमें संयती त्रिलोकी वाक् तत्व से और क्रन्दसी आप तत्व से तथा रोदसी अग्नि तत्व से परिवेष्टित है। क्रन्दसी त्रिलोकी ही विष्णु का परम धाम है (अक्षर धाम है) श्रुति वाक्य है

याते धामानि परमाणि यात्र मायामध्यमा विश्व कर्म्मन्नु तेजसा।　ऋक् संहिता१०।८१।५

उक्त मन्त्र में विश्वकर्मा शब्द का अर्थ है कि सारी सृष्टि का आदि स्रोत सर्वातीत निरञ्जन निर्विकार मायातीत स्वरूप जो सर्वदा अचिन्त्य कोटि में आता है वह ही भगवान् विष्णु हैं

यं विदन्ति न यं वेदा विष्णु वेदन वा विधिः यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

यह ही अमृतलोक है मृत्युलोक की तरह यहां कोई परिवर्त्तन नहीं है और न यहां तामसी निद्रा का प्रवेश है। फिर भगवान् सोते हैं। इसका अर्थ यह है। कि अपने स्वरूप में मग्न रहते हैं इसी अचिन्त्य परिर्वातित आनन्द स्वरूप का नाम यहाँ श्रीलक्ष्मी है। ये भगवान् के स्वरूप से अभिन्न हैं

विष्णोः स्वरूपा परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र।

विष्णुपुराण अध्याय दो में कहा है कि विष्णु के परम उपाधि रहित स्वरूप के प्रधान और पुरुष दो रूप हैं। प्रधान स्वरूप से शान्ताकार व पुरुष रूप से सृष्टि करते हैं। इसलिए इन्हें शान्ताकारं भुजगशयनं कहा जाता है।

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। व्यक्ताव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे।

विष्णुपुरा १-२-३

एक होकर भी अनेक रूप वाले हैं। सूक्ष्म स्थूल रूप हैं अव्यक्त(कारण रूप और व्यक्त (कार्य-रूप) मुक्ति के कारण भगवान् विष्णु का ऐसा स्वरूप सभी ग्रन्थों में वर्णन किया है

गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक् पुंसि व्यवस्थिते, कालस्वरूपं तद्विष्णो मैत्रेय परिवर्त्तते।

विष्णुपुराण १.२.२७

आनन्द स्वरूप सदैव एक रस रहते हुए भी वे सृष्टि की उत्पत्ति व प्रलय काल को ध्यान में रखते हैं, वही अभिन्न काल-शक्ति शेष का स्वरूप मानी जाती है।

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धक्षोभाय जायते मनसो नोपकर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वरः। विष्णुपुराण १.२.३०

जिस प्रकार क्रियाशील न होने पर भी गन्ध अपनी सन्निधि मात्र से मन को क्षुभित कर देता है, उसी प्रकार अकर्ता परमेश्वर विष्णु अपनी सन्निधि मात्र से सर्ग काल में सृष्टि की उत्पत्ति के लिए प्रधान पुरुष को प्रेरित कर देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जिस शक्ति से समय-समय पर सृष्टि की उत्पत्ति व प्रलय होता है,वही काल स्वरूप-शक्ति शेष कहा जाता है और सदैव उससे अभिन्न रहने के कारण भगवान् उस पर सोते हैं यह तात्पर्य व्यक्त होता है।

जैसे ऊपर कहा जा चुका है कि क्रन्दसी त्रिलोकी आप(जल) तत्व से आवृत है इसी आप तत्व को महासमुद्र कहा गया है—

परमेष्ठी प्रजापत्यो यज्ञमपश्यत। स आपोऽभवत् स आप इदम् सर्वम्। शतपथ ब्रा. १४.४.२.२५

आपःस्थ समुद्रेश्रिताः तैत्तियब्राह्मण। ३।११।१-५

यह आपोमय जल स्थूल जल नहीं है, अपितु अम्भ नाम का वायुमय जल है

इसी में सप्त रसात्मक दुग्ध का उदय होता है अतएव इसे क्षीरसमुद्र कहा जाता है। वेदों में इसका नाम पारमेष्ठ्य वैष्णव समुद्र व सरस्वान नाम प्रसिद्ध है। विष्णु के इस स्वरूप का वर्णन करते हुए पुराणों की समाधि भाषा में कहा गया है कि क्षीर सागर में शेष शैय्या पर विष्णु भगवान् सोते हैं लक्ष्मी उनके चरण सेवा में संलग्न रहती हैं।

पुराणों का ऐसा नियम है कि अलौकिक तत्व को समझाने के लिए लौकिक भाषा का प्रयोग किया जाता है श्रीमद्भागवत में वर्णित यही क्षीर सागर है कि जहाँ ब्रह्मा शिव समस्त देवताओं के साथ गए थे | **ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवै स्तथामरैः जगाम सत्रिनयन स्तीरं क्षीरपयोनिधेः।**

श्रीमद् भागवत दशम स्कंध १।१९

क्षीर सागर के तट पर पहुँच कर पुरुषसूक्त द्वारा देवताओं ने स्तुति की। स्तुति करते हुए ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गए उस समाधि अवस्था में उन्होने आकाशवाणी सुनी जिसका ऐसा वर्णन है-

गिरं समाधौ गगने समीरिताम्, निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनः विधीयतामाशु तथैव मा चिरम्॥ भागवत १०. ८. २१

ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि मैंने भगवान् की वाणी सुनी है, उसे तुम मेरे द्वारा सुनो। इससे सिद्ध है कि वह वैखरी वाणी नहीं थी, नहीं तो सब देवता उसे सुनते उसे केवल ब्रह्माजी ने समाधि भाव में सुना।

भगवान् का दिव्य लोक जहां जहां पंच भूतों का प्रवेश नहीं है न पृथ्वी जैसा वातावरण है

[क्रमशः]

श्रीरामायण में मन्त्ररत्न-विवरण

—विद्वान् स्वामी श्री टी० के० गोपालाचार्यजी महाराज दक्षिणभारत

卐

इस निबन्ध में मन्त्ररत्न (द्वयमन्त्र) के लिये रामायण आदर्श (आइना) ही है। यह बात सिद्ध की जा रही है। द्वयमन्त्र पूर्वोत्तर खण्ड के भेद से दो खण्डों में विराजित है। पूर्वखण्ड उपाय बोधक और उत्तर खण्ड उसके फल का परिचायक है। वस्तुतः उपाय तो लक्ष्मीनारायण की शरणागति है, फल परमपद में नित्यमुक्तों के लिये अनुभवयोग्य नित्य निरवच्छिन्न कैङ्कर्य हीहै। उपाय की इच्छा के लिये फल की इच्छा प्रधान कारण ठहरती हैं। कारण पूर्वमें कार्यबादमें यह भी नियम है। अतः रामायण में फलरूप उत्तरखण्ड को दिखाकर उसके बाद पूर्वखण्ड को दिखायेंगे।

उत्तरखण्ड तो 'श्रीमते नारायणाय नमः' है। अष्टश्लोकी के पाँचवे श्लोक में द्वयमन्त्र के उत्तर खण्ड का अर्थ करते हुये कहा है- 'अथ मिथुनपरं प्राप्यमेवं प्रसिद्धं, स्वामित्वं प्रार्थनाञ्च प्रबलतर-विरोधि प्रहाणम्।' कहा है। इनसे 'श्रीमते' का अर्थ स्वामित्वं से 'नारायण' का अर्थ, 'प्रार्थनाञ्च' से 'आय के अर्थ को, 'प्रबलतर....' आदि से 'नमः' पदार्थ का विवरण किया है। शिष्टाचार प्रबल प्रमाण होता है। श्रीवरवरमुनि स्वामीजी प्रामाणिकाग्रेसर हैं, उनका नित्यानुष्ठान है-'मन्त्ररत्नानु-सन्धानसन्ततस्फुरिताधरः। तदर्थ तत्वनिध्यायन सन्नद्धपुलकाङ्कुरः॥' अर्थात् जब जब समय मिलता तब तब द्वयमन्त्र के अर्थानुसंधान पूर्वक सर्वाङ्ग में पुलकित होते रहते थे। उस मन्त्रार्थ के ग्रन्थों के पढ़ने में मन लगाना कष्ट साध्य है। 'श्रीरामायथ' और 'श्रीमद् भगवद्विषय दोनों ग्रन्थ मन्त्ररत्न के विवरण ही हैं।

अब थोड़ा श्रीरामायण से इस विषय पर अनुसंधान करें। 'श्रीमते नारायणाय नमः' यह मन्त्र का उत्तर खण्ड है। श्रीलक्ष्मी देवी जी के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध से युक्त होकर अपने भक्तों के लिये अभीष्टों को प्रेम से प्रदान् करने वाले श्रीमन्नारायण की नित्यनिरवच्छिन्न सेवायें प्राप्त हो जायें और उनको कभी बाधा न हो, इस खण्ड का सारांश है।

'मिथुनपरं प्राप्यम्' लक्ष्मीजी का नारायण के साथ नित्यसम्बन्ध को बताने वाला रामायण का बालकाण्ड ही है। यहाँ के सकल कल्याण गुणों को कहने वाला 'नारायण' पद ही है। यह पद भक्तों के लिये सकल-अभीष्टों को देनेवाले नारायण के ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तेज रूप गुणों को बतलाता है।

दशरथ चक्रवर्तीजी ने श्रीराम को सकल सद्गुणों का आकर जानकर ही यौवराज्य पट्टाभि-षेक लायक जान लिया था। रामायण अयोध्याकाण्ड प्रथमसर्ग में श्लोक ६ से ३३ श्लोक तक २८ श्लोकों में स्वयं ही श्रीराम के कल्याण गुणों का वर्णन किया है। आगे यहीं पर श्लोक ३८ से ४१ श्लोक तक दशरथजी ने श्रीराम के कल्याण गुणों का वर्णन किया। सामन्तगण एवं पुर प्रधान आदि ने श्लोक २६ से ५४ तक श्रीराम के गुणों का वर्णन किया। यद्यपि राजा दशरथ सर्वाधिकार सम्पन्न थे

फिर भी प्रजाओं से परामर्श किये थे। उन्होंने सम्पूर्ण प्रमुख पुरुषों को बुलाकर उनसे सलाह पूछी—सबने कहा 'बहवो नृप ! कल्याणगुणाः पुत्रस्य सन्ति ते' हे राजन् ! 'आत्मनो जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' इस नियम से आपके पुत्र आपसे बढ़कर गुणवान् हैं। इस प्रकार सामान्य रूप से गुणों का वर्णन कर, एक एक गुणको लेकर विशेषरूप से अपने अनुभवों को प्रकट किये। इससे उत्तरखण्ड के नारायण शब्द का विवरण कहा गया।

नारायण पदके आगे चतुर्थी विभक्ति की 'आय' को समझिये। भरतजी चित्रकूट से श्रीराम पादुकाओं को लेकर नन्दिग्राम चले गये। चित्रकूट-अयोध्या मार्ग घण्टापथ बन गया, जिससे अपनी और ऋषिमुख्यों की शान्ति भङ्ग होने से श्रीराम चित्रकूट छोड़कर दण्डकारण्य में प्रविष्ट हो गये। वहाँ के ऋषि त्रिकालज्ञ होने से श्रीराम के आगमन को जान गये। दण्डकवन में रावण प्रेरित खरादि राक्षस, ऋषियों के वैदिक-अनुष्ठानों को बिगाड़ देते थे। यद्यपि वे अपनी तपः शक्ति से अपनी रक्षा करने में समर्थ थे,किन्तु व्यर्थ शक्ति का अपव्यय होने के डर से और प्रपन्न व्यक्ति के लिये यह आचरण निषिद्ध होने से भी श्रीराम के द्वारा उन राक्षसों का दमन हो, इसीलिये वे यहाँ आये हैं, यह जानकर वे ऋषिगण तुरन्त श्रीराम के पास दोड़ आये—**'दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः' अभ्यगच्छन् तथा प्रीताः वैदेहीं च यशस्विनीं, लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वातु..मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगच्छन् दृढव्रताः ।।** ऋषिजन श्रीराम के कर्तव्य को जानने वाले थे। अतः लक्ष्मी और भागवतों के पुरुषकार को आगे करके श्रीराम का मङ्गलाशासन किया था और पुष्पफलादि भेंट करके अपने को राक्षसों की पीडा से मुक्त करने की प्रार्थना की थी। यह चतुर्थी विभक्ति 'आय' का अर्थ है।

'श्रीबचनभूषण' के तृतीय प्रकरण में इस मंगलाशासन का पूर्ण विमर्श प्राप्त है। हमारे सम्प्रदाय में 'पल्लाण्डु' प्रबन्ध, वेदों में जैसे 'ओम्' वैसे दिव्यप्रबन्धों में पल्लाडु प्रथम है। यह मुख्य नियम है। अब 'नमः' पद का विवरण श्रीरामायण में देखना है। इसके अर्थ को श्रीभट्टर ने **'प्रबलतरविरोधिप्रहाणम्'** अष्ट ५वां श्लोक अर्थात् भगवान् की सेवा में जो अडचनें हैं उन सबों को हटादेने की प्रार्थना है। श्रीराम से हमारी प्रार्थना अपनी शरीर पीडा हटाने हेतु नहीं है किन्तु पूजनीय महात्माओं को इन राक्षसों से हो रही पीड़ा दुस्सह हो रही है। **'ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः। पारिपालय नो राम! वध्यमानान्निशाचरैः ।।** यह सुनकर श्रीराम ने कहा—**'नैवमर्हथ मां वक्तुं आज्ञप्तोऽहं तपस्विनां। केवलेनात्मकार्येण प्रवेष्टव्यं मया वनम् ।।'** आप जैसे ऋषियों द्वारा मुझे आज्ञादेनी उचित है, प्रार्थना करना अनुचित है। यह तो मेरा कर्तव्य है, इसी के लिये मैं बन में आया हूं।**"तपस्विनां रणे शत्रुन् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्। पश्यन्तु वीर्यं ऋषयः स भ्रातुर्मे तपोधनाः।"** हे ऋषिजनों ! आपके शत्रु राक्षसों का समूलनाश कर डालूंगा मेरे इस पराक्रम को भाई लक्ष्मण के साथ आप लोग देखेंगे। यही तो 'नमः' पदका अर्थ है। वहां तक उत्तरखण्ड का विवरण दिखाया गया।

अब पूर्वखण्ड का विवरण देखें—'श्रीमन्नारायण·······प्रपद्ये' इसका सारार्थ है कि जो लक्ष्मी जी एक पल के लिये भी नारायण को नहीं छोड़पाती, उनलक्ष्मी जी को आगेरखकर स्वामित्व, सौशील्य सौलभ्यवात्सल्य, पूर्ति,प्राप्ति ये छह गुण जिसमें प्रधानतया विराजते हैं। ऐसे नारायण को ही हमें सदा सर्वदा मानकर रहना चाहिये। यहाँ लक्ष्मीजी के पुरुषकार के लिये आवश्यक कृपा, अनन्यार्हत्व, पारतन्त्र्य इन तीन गुणों से पूर्णता दिखायी जाती है। परमात्मा का कथन है—**'मत्प्राप्ति**

प्रतिजन्तूनां संसारे पतताम‌धः । लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ।। ममापि हि मतं ह्येतत् नान्यथा लक्षणं भवेत् ।।' अर्थात् पाप के वश होकर संसार कूप में गिरकर दुस्सह पीडा अनुभव करने वाले लोग संसार से बिछुकड़र फिर से जन्मलेना पड़े । परमपद में नारायण का सायुज्य प्राप्त करके नित्य और मुक्तों के साथ मिलकर भगवान् के अनुग्रह से नित्यनिरवच्छिन्न कैंकर्य को प्राप्त करते हैं । उसके लिये माताजी का पुरुषकार आवश्यक है । यह केवल ऋषियों का उद्घोष नहीं अपितु मुझे भी अभीष्ट है । अतः इस शरणागति मन्त्र के पूर्वखण्ड में 'श्री' शब्द का अर्थ और पुरुषकार भूत लक्ष्मीजी ही है । 'श्री' शब्द 'नारायण' शब्द के बीच एक 'मन्' प्रत्यय है । उसका अर्थ है—'नित्यसम्बन्ध' लक्ष्मीजी का नारायण के साथ नित्यसम्बन्ध है । यह नित्यसम्बन्ध क्यों है ? शरणागति के लिये किसका आश्रयण करना चाहिये ? इसका एक नियम है । इसमें देश, काल, फल और अधिकारी का नियम नहीं है । कौन चेतन, किस समय, संसार से विरक्त होकर परमात्मा में अनुरक्त हो शरणागति करेगा, तब भगवान् उसके पुण्यपापों का चिट्ठा देख उसके पापों को अधिक देख गुस्से में हो जाते हैं । **'हितस्रोतो वृत्या भवति च कदाचित् कलुषधीः ।'** चेतन की भलाई के लिये ही भगवान् उस पर गुस्सा करके उसे शिक्षा देने के लिये तयार हो जाते हैं । तभी मा लक्ष्मी भगवान् को सान्त्वना (धीरज) देती उनके पास ही खड़ी होती हैं । वे प्रभु को समझाती हैं **'निर्दोषः क इह जागतीत्युपायैः विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः'** चेतन को ऐसी शिक्षा के द्वारा भगवत् कोप से माता बचाने हेतु ही कभी परमात्मा से अगल नहीं रहती हैं । इसी प्रधानार्थ को 'मतुप्' प्रत्यय बताता है । इसी काम के लिये माताजी श्रीराम के साथ जंगल के सम्पूर्ण कष्टों को सहन करती हुई चल पड़ीं ।

माताजी के पुरुषकार के लिये एक उदाहरण–ऋषिगण अपने रक्षण की प्रार्थना करके चले गये । किन्तु ऋषियों की रक्षा करने में राक्षसों पर क्या बज्रपात होने वाला है, इसे बिचारकर माता ने उस ऋषि रक्षण को मनाकर दिया । यह सुनकर श्रीराम ने एक प्रतिज्ञा करली—**'अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते ! सलक्ष्मणम् । न तु प्रतिज्ञां संस्मृत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।'** अर्थात् सभी अभीष्टों को त्यागने वाला मैं ब्राह्मण प्रतिज्ञा को कभी नहीं छोड़ूंगा । माने इसी दृढ़ता के लिये राजधर्म को जानकर भी थोड़ी अड़चन डाली थी । रामायण के अरण्यकाण्ड में खरदूषणादिवध तक 'नमः' पद का उद्घाटन है । द्वयमन्त्र के पूर्वार्ध में शरणागति का उद्घाटन है । शरणागति के लिये माताजी के पुरुषकार की अत्यन्त आवश्यकता है । यह बात विभीषण में कैसे घटेगी ? विभीषण को ब्रह्मा जी के वर से सारे धर्म स्वाधीन हैं । इसलिये सीताजी अशोकवन में रहतीं तब भी विभीषण अपनी बहिन त्रिजटा से,भाभी'सरमा'व पुत्री'अनला'से सीताजी की सेवा कराकर माता का अनुग्रह पात्र बन गया । वहिन से राक्षसियों के तर्जन भर्जनसे हटाया । तिरस्करणीविद्या जानने वाली अपनी भाभी से रावण-सभा में सीताजी के वारे में गुप्त बातों को बेटी अनला के द्वारा सीताजी को बताता था । इस प्रकार विभीषण पर श्रीराम का अनुग्रह कराने के लिये सीताजी जानबूझकर ही श्रीराम से पहले लंका पहुँच गयी थीं । इसीलिये वन जाने से पूर्व मा ने श्रीराम से स्पष्ट कहा था कि—**'अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्'** मैं आपसे पहले लंका पहुंचकर संसार में रहने वाले शिष्टजनों के सुखों में काँटे विछाने वाले राक्षसों को आपकी शिक्षा के लायक बना दूँगी । इससे यह भी संकेत है कि मा का लंका में प्रवेश जानबूझकर है । रावण के छूलेने पर अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से वे रावण को भस्मकर सकती थीं । किन्तु एक रावण ही तो भस्म होता । रावण के समान अन्य बहुत से

राक्षसों का वध कैसे होता ? रावण के करागार में बन्दी अन्य देवाङ्गनाओं का उद्धार कैसे होता ? पिल्लैलोकाचार्य स्वामीजी ने श्रीरामायण का सार बताते हुये कहा-माताजी का यह प्रभाव लंका में हनुमानजी की पूँछ में आग को 'शीतो भव' मन्त्र से उसको पीडा से बचा दिया ।

अब 'श्रीमत्' शब्द के अर्थ को बताने के बाद 'नारायण' पदार्थ को श्रीपराशर भट्टर ने 'समुचित गुणजातम्' से बताया है । ये गुण प्रपन्नों के लिये—स्वामित्व, सौशील्य, सौलभ्य, वात्सल्य, ज्ञान, शक्ति, पूर्ति प्राप्ति ही हैं । ये सब गुण किष्किन्धा काण्ड में तारा के मुँह से कहे गये हैं । 'रामतत्व को जानने वाली रामायण की रमणियाँ' लेख में उन शब्दों के अर्थ को उपनिषदों से समन्वय करके दिखाया है ।

'चरणौ' इस पदके लिये 'तनुख्यापञ्च' अर्थ से शरीर वाचक अर्थ बताया है । श्रीराम के शरीर सौन्दर्य का वर्णन हनुमान ने सीता जी से किया, इससे उन्होंने स्वयं को श्रीराम का दूत साबित कर दिया । मानो हनुमान ने श्रीराम के प्रत्येक अंग को नाप लिया हो । यह सब विश्वास जमाने के लिये था अतएव यह 'सुन्दरकाण्ड' कहा गया ।

'शरणं प्रपद्ये' इन पदों का अर्थ विभीषण शरणागति से स्पष्ट होता है । शरणागति के छह अंग प्रधान हैं । इनमें से एक को भी छोड़े बिना विभीषण ने अपने अनुष्ठान में दिखाया । इस प्रकार रामायण में आपादचूलम् द्वयमन्त्रार्थ का विवरण स्पष्ट है । □

श्रावणी-कर्म

—आचार्य नरेशचन्द्र शर्मा, वृन्दावन

श्रावणी कर्म द्विजाति मात्र का आवश्यक-करणीय-कर्म है । इसे 'उपाकर्म' भी कहा जाता है । यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन अर्थात् रक्षाबन्धन वाले दिन किया जाता है । इस समय औषधी अर्थात् अपामार्ग (औंघा) का प्रादुर्भाव होजाता है । श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा तिथि में यह उपाकर्म वाण-प्रस्थीं और गृहस्थ, ब्रह्मचारियों को भी करना आवश्यक है । जैसा कि 'प्रयोग पारिजात' में कहा है—

उपाकर्मोत्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते ।
धारणाध्ययनाङ्गत्वात् गृहिणां ब्रह्मचारिणाम् ॥

श्रावणशुक्ल पूर्णिमा के दिन यदि संक्रान्ति या ग्रहण हो तो श्रावणीकर्म श्रावण शुक्ल हस्त नक्षत्र से युक्त पंचमी को करना चाहिये—'स्मृतिमहार्णव' का बचन है—

संक्रान्तिर्ग्रहणं वाऽपि यदि पर्वणि जायते ।
तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते ॥

जो द्विज प्रथम वार श्रावणी कर्म में प्रवृत्त हो रहा हो, उसे अधिकमास और शुक्रास्त, सूतक, का विचार कर लेना चाहिये—

संक्रान्तौ ग्रहणे चैव सूतके मृतकेऽपि वा ।
गणस्नानं न कुर्वीत नारदस्य वचो यथा ॥
(रेणुका दीक्षितकारिका)
(गणस्नानशब्देनोत्सर्गाख्यंकर्म)

इसी विषय पर कश्यप का मत दृष्टव्य है—

गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्धकेऽपि वा ।
तथाधिमास सङ्क्रान्तौ मलमासादिषु द्विजः ॥
प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाशकृत् ॥

प्रथम वार प्रारम्भ करते सयम ही इन सब को विचारना चाहिये । यह कर्म पूर्वाह्न अर्थात् सूर्योदय से मध्याह्न तक कर लेना चाहिये । यदि प्रातः भद्रा हो तो भद्रा का समय समाप्त होने पर कर्म प्रारम्भ करे ।

'भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।
श्रावणी नृपतिं हन्ति राष्ट्रं दहति फाल्गुनी ॥

अन्यथा राजा को और राष्ट्र को हानि हो सकती है ।

वर्षा काल में नदियाँ ऋतुस्नाता (राजस्वला) हो जाती हैं, अतः इन दिनों में नदी-स्नान करना वर्जित है किन्तु श्रावणीकर्म, बृषोत्सर्ग, मरण काल में और चन्द्र - सूर्य ग्रहण में स्नान करना मना नहीं है—

उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च।
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥

जैसे द्वादशाराधन करने से बारह मास के आराधनों में जो कोई त्रुटि रह जाती है या उसकी संभावना भी हो तो उस त्रुटिकी मार्जना हो जाती है, वैसे ही उपाकर्म करने से वर्षभर में संन्ध्यावन्दन, पंचमहायज्ञादि में जो त्रुटि रह जाती है,उसकी भी पूर्ति हो जाती है। पंचगव्य-गोमूत्र, गोवर, दूध, दधि, घृत ये गाय के ही लेने चाहिये।

उपाकर्म में करणीय कर्म—नदी के जल में स्नान कर नदी की मृत्तिका से तिलक कर तीन वार आच मन कर पवित्री धारण कर जलाक्षत पुष्प दाहिने हाथ में लेकर महासंकल्प करे। तीर्थ प्रार्थना, तीर्थ की मिट्टी से स्नान गोमय (गोवर) से स्नान, भस्मस्नान, कुश से मार्जन, तर्पण करे। मध्याह्न संध्या करे। सूर्यदर्शन। ऊपर भुजाकर के सूर्य वन्दन पुरुष सूक्तका पाठ करे। फिर तर्पण करे। ब्रह्मयज्ञ करके जल से वाहर आकर शुद्ध वस्त्र धारण करे। विघ्न दूर करने को सरसों फेंके। प्राणायाम, स्वस्तिवाचन करके नवग्रह, ब्रह्मा, गणेश, षोड़श मातृका, पृथ्वी, यज्ञपति, गायत्री, भगवान् लक्ष्मीनारायण, सप्तचिरञ्जीवियों ६४ योगिनी क्षेत्रपाल सप्तर्षियों के साथ वास्तु पूजन करे। सात ऋषि—कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वसिष्ठि, यमदग्नि हैं। अरुन्धति, याज्ञवल्क्य का भी पूजन करे। ऋषियो को यज्ञोपवीत वस्त्र फल, पुष्प, दक्षिणा चढ़ावे। इसके बाद एकवर्ष के लिये यज्ञोपवीतों का पूजन प्रतिष्ठा करे। उनमें से एक जोड़ा यज्ञोपवीत गृहस्थ धारण करे। ब्रह्मचारी एक ही धारण करे। तत्र देवतर्पण करे। ऋषियों के वंश का स्मरण करे। इससे हमें अपने पूर्वजों के त्याग तपस्वी जीवन का भी स्मरण होता है। इस समय वेदाध्ययन करना चहिये, यदि स्वयं वेद मन्त्रों का पाठ न कर सके तो आचार्य के मुखसे उनका पाठ सुने। पुण्य होता है। पाप कटते हैं। जल की कुछ बूँदे पृथ्वी पर छोड़ दे। साष्टाङ्गकरे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा दे। आरती, परिक्रमा, पुष्पांजलि प्रदान कर, भूयसीद क्षिणा के उपरान्त विसर्जन करे।

इस कर्म के समापन काल में जो कहा जाता है वह बड़ा ध्यान देने योग्य है—

ॐ सहनो ऽस्तु सहनो ऽ वतु, सह न इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्म। इन्द्र स्तद्वेद येन यथा न विद्विषामहे॥

इस मन्त्र में कहा गया कि हम अध्ययन के लिये एकत्र हुये सहाध्यायी अपने हृदय में स्थिर भाव को प्राप्त करें। इसके बाद तीन दिन तक वेदका अध्ययन न करे। इस प्रकार श्रावणी कर्म द्विजों को अवश्य करणीय है।

बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि आज का द्विज युवापीढ़ी यज्ञोपवीत धारण करना तो जनता ही नहीं, उसके नियम पालन तो दूर की बात हैं। सन्ध्या से कोई सरोकार ही नहीं फिर गायत्री जप तो कोसों दूर हो गया। ऐसे युवक कहें कि हम द्विज हैं, आश्चर्य है। शरीर को मात्र पोषण करने वाले युवा उससे ऊपर उठ कुछ कर्मठता की ओर भी ध्यान दें। तभी भारतीय संस्कृति सुरक्षित रह सकती है।

श्रीवृन्दावन के दर्शनीय देवालय

—आचार्य नरेशचन्द्र शर्मा
अध्यक्ष-
श्रीविनायक सेवा समिति (रजि०) श्रीवृन्दावन

❀❀❀

श्रीवृन्दावनधाम भगवान् श्रीराधाकृष्ण की नित्यलीला स्थली है। भक्तों का परम प्राप्तव्य एवं ध्येय स्थल है। श्रीकृष्णरूप गिरिराजगोवर्धन, श्रीकृष्ण भक्ति प्रदायिनो श्रीयमुना महारांनी, श्रीमथुराजो जहाँ 'नित्यं सन्निहितो हरिः' श्रीकृष्ण का नित्य सान्निध्य प्राप्त है। गोकुल तो श्रीकृष्ण एवं उसके रसिक सन्तों के लिये देखने मात्र से परमाप्रीति उत्पन्न कराने वाला स्थल है। इसी को प्राचीन आल्वार=भक्तिरस में डूबे हुये सन्तों ने विविध प्रकार से स्मरण कर प्रेमाम्बुधि में अवगाहन किया है - **गोवर्धनो गिरिवरो यमुना नदो सा, वृन्दावनं च मथुरा च पुरी पुराणी।**

अद्यापि हन्त सुलभाः कृतिनां जनानाँ, एतेभवच्चरण चारुजुषः प्रदेशाः॥(श्रीकूरेशस्वामीजी)

अर्थात् गिरिराज गोवर्धन, श्रीयमुना नदी, वह प्रसिद्ध वृन्दावन, प्राचीन नगरी मधुपुरी= मथुराजी ये विशेष स्थल आज भी बहुत पुण्यात्माओं को दर्शन करने को मिलते हैं। क्योंकि ये स्थल भगवान् श्रीकृष्ण के चारु-चरणों से सेवित होने से परमपवित्र हैं। इन स्थलों की रज शिर पर धारण करने योग्य है। परम सात्विकता प्रदान करती है।

श्रीगोविन्दजी का मन्दिर—यह अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। इसे विद्वान् सन्त श्रीरूपगोस्वामी जी की प्रेरणा से राजा मानसिंहजी ने सं० १६४७ में निर्माण कराया था। इसमें श्रीराधागोविन्दजी का विग्रह गोस्वामीजो को गोमा टीले से प्राप्त हुआ जो इस कलाकृति पूर्ण मन्दिर में सेवित हुआ। औरंगजेब की शनि दृष्टि इस पर पड़ी। श्रीराधाकृष्ण का दिव्यविग्रह जयपुर राज संरक्षण में पहुँचा दिया गया। जयपुर राजमहल के समक्ष मन्दिर में वे आज भी वही समाराधित हैं। वृन्दावन में पुराने गोविन्द मन्दिर के समीप सम्वत् १८७२के आस पास एक नया मन्दिर श्रीनन्दकुमार वसुके धन से बना जिसमें श्रीराधागोविन्दजी की पूजा सेवा होती है। इसमें गौडोय, वैष्णव, बंगाली गोस्वामो अधिकारी हैं। वृन्दावन का अधिकांश भू भाग इसी मन्दिर की सम्पत्ति है।

श्रीरङ्ग मन्दिर—दाक्षिणात्य और जयपुर की स्थापत्य कला का अनूठा नमूना यह विशालतम दिव्यदेश है इसे मथुरा के नगर सेठ श्रीलक्ष्मीचन्द्र, सेठ राधाकिशन, सेठ गोविन्ददास पारिख जंनी ने अपने धन से वि०सं० १९०० के आसपास बनवाया। उत्तर भारत के गौड़ ब्राह्मण श्रीशठकोपाचार्य जी के पुरुषकार से सेठ राधाकिशन ने श्रीरंगदेशिक स्वामीजी महाराज का शिष्यत्व ग्रहण किया। यह देख सेठ गोविन्ददास ने भी श्रीवैष्णवत्व स्वीकारकर लिया। केवल बड़ा भाई पञ्चसंस्कारित न हो सका। वि०सं० १९०६ में इस दिव्यदेशमें श्रीगोदारङ्गमन्नार भगवान् की प्रतिष्ठा श्रीतोताद्रि स्वामीजी महाराज के सानिध्य में सम्पन्न हुई। उन्हें अग्रतीर्थ और एक लाख रुपये चाँदी के भेंट किये गये। यहाँ श्रीगोदारगमन्नार भगवान् और गरुडजोकी मुख्य सन्निधि है। जैसे श्रोविल्लीपुत्तूरमें है। श्रीसुदर्शनजी श्रीनरसिंहजी, श्रीवेंकटेशजी, **भगवान् श्रीवेणुगोपाल, आल्वारों की सन्निधियाँ,** श्रीरामानुजाचार्यजी,

श्रीयामुनाचार्य, श्रीरङ्गदेशिक स्वामीजी एवं गरुड़ स्तम्भ के दर्शन प्राप्त हैं। दूसरी परिक्रमा में श्री-रघुनाथजी, श्रीशयन रङ्गनाथ, वाहन मण्डप आदि के दर्शन हैं। उससे बाहर वाली वीथी में श्रीहनु-मानजी, बारहद्वारी, पुष्करणी, शुक्रवार मण्डप बगीची पार्श्व में आचार्यगद्दी आचार्यों के आवास आदि हैं। इस मन्दिर के निर्माता सेठ परिवार ने इस मन्दिर और भी चल-अचल सम्पत्ति को १८ मार्च सन् १८५७ ईसवी को श्रीठाकुरजी महाराज श्रीगोदारङ्गमन्नार को अर्पण कर दिया जिसे १६ जनवरी १८६८ को रजिस्ट्री करा दिया। यही श्रीरङ्गदेशिक स्वामीजी ने किया। तब से यह मन्दिर भगवत्सम्पत्ति है जिसे एक ट्रस्ट संचालित करता है। सं० १९३१ में श्रीरङ्गदेशिक स्वामीजी महा-राज का वैकुण्ठवास हो गया। यह श्रीवैष्णव सम्प्रदाय उत्तर भारत का प्रमुख दिव्यदेश है।

श्रीब्रह्मकुण्ड - श्रीकृष्णलीला से मुग्ध हो, यहाँ से ब्रह्माजी ने गाय-बछड़े हरण किये थे।

श्रीलाला बाबू का मन्दिर—यह मन्दिर श्रीरङ्गमन्दिर के उत्तरपार्श्व में है। मुर्शिदाबाद बंगाल के वैष्णव परिवार बाबू श्रीमुरलीमनोहरजी के कुल में बाबू श्रीकृष्णचन्द्रसिंह जिन्हें ब्रज 'लालाबाबू' नाम से पुकारता था, इन्होंने अपने द्रव्य से सम्वत् १८६७ के आस-पास इस मन्दिर को बनवाया, यहाँ भगवान् श्रीराधाकृष्णचन्द्र की विशाल मूर्ति है। वे इतने बड़े विरक्त वैष्णव थे कि ब्रजवा-सियों के घरों से मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करते थे। उन्होंने एक नौकर से सुना 'आमार वेला गेलो' मेरा बहुत समय व्यर्थ बीत गया। इसे सुनकर वे विरक्त हो गये।

श्रीगोदाविहार मन्दिर—यह लालाबाबू मन्दिर के पार्श्व में स्थित है। इसे श्रीस्वामी बलदेवाचार्यजी ने निर्माण कराया। इसमें श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान् की विशाल मूर्ति है। दशावतार, भारत के प्रमुख भक्तों, सन्तों, राजर्षियों की सैकड़ों मूर्तियाँ दृष्टव्य हैं इस महान् कार्य को करके और उस सेवा सुख का अनुभव कर दि० २४-५-८८ को श्रीस्वामी बलदेवाचार्य का वैकुण्ठवास हो गया।

ज्ञानगुदड़ी—श्रीकृष्ण प्रेषित ज्ञानी उद्धव द्वारा यहाँ ब्रजगोपियों को ज्ञानोपदेश देने का स्थल है। यहीं श्रीतोताद्रि मठ है।

वंशीवट - यहाँ श्रीकृष्ण ने वंशीध्वनि करके गोपियों को बुलाया और महारास क्रीडा की थी। गोपियों की दशा देखकर उनका ज्ञान गल गया।

श्रीगोपीनाथजी—यह मन्दिर प्राचीन है। गौडीय सम्प्रदाय के मधु पण्डित गोस्वामी से यह विग्रह सेवित है। इस मन्दिर का निर्माण सम्वत् १६४६ में रायसेन राजपूत सरदार ने कराया था। औरंगजेब के समय इस देवविग्रह को जयपुर ले जाया गया। यहाँ नया मन्दिर नन्दकुमार वसु ने सम्वत् १८७७ में बनवाया और गौडीय वैष्णवों द्वारा देवविग्रह की आराधना प्रारम्भ हुई।

श्रीराधारमण मन्दिर—यह मन्दिर श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीजी द्वारा सेवित है। यह विग्रह शालग्राम से मधुर मूर्ति श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ। यहाँ का प्रथम अभिषेक सम्वत् १५९९ में हुआ। श्रीराधाजी की यहाँ मुकुट सेवा होती है। इस मन्दिर का निर्माण लखनऊ के रईस शाह कुन्दन लाल ने कराया। माध्वगौडीय सम्प्रदाय का यह प्रमुख मन्दिर है।

शाहविहारीका मन्दिर—संगमरमर से बना टेढ़ेखम्भाके नामसे प्रसिद्ध इसमन्दिरका निर्माण शाह कुन्दन लाल, शाहफुन्दनलाल लखनऊने सम्वत् १९२५ में कराया था। इसमें बसन्ती कमरा दर्शनीय है जो बसन्तपंचमी को खुलता है। भक्तों में इन दोनों भाईयों का नाम 'ललितकिशोरी' प्रसिद्ध है।

निधिवन यहीं श्रीस्वामी हरिदासजी की भजन-स्थली और श्रीबांकेबिहारीजी की प्राकट्य स्थली है। तानसेन के गुरु श्रीस्वामी हरिदासजी के दर्शन करने अकबर बादशाह यहीं पर आये थे। प्राचीन वृन्दावन की रंचमात्र छटा यहाँ देखने को मिलती है।

श्रीराधा-दामोदर मन्दिर—श्रीजीव गोस्वामीजी के उपास्य विग्रह श्रीराधादामोदरजी का यह मन्दिर शृङ्गारवट के पास स्थित है। यहीं श्रीसनातन गोस्वामी से सेवित गोवर्धन शिला है जिस पर श्रीकृष्ण के चरणचिह्न अङ्कित हैं। यहीं पर श्रीभक्ति वेदान्ततीर्थ महाराज ने उपासना की थी, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावना मिशन की स्थापना कर सैंकड़ों श्रीकृष्ण मन्दिर विदेशों में स्थापित किये।

सवामन शालग्रामजी का मन्दिर—यह लोई बाजार में स्थित है। इसमें सवामन वजन की शालग्राम शिला है। यह स्थान रींवा राजगुरुजी का है। वर्तमान में श्रीस्वामी दामोदराचार्यजी शतायु श्रीवैष्णव महात्मा महानुभाव हैं।

श्रीराधा-श्यामसुन्दरजी का मन्दिर—यह मन्दिर भक्त श्रीश्यामानन्द प्रभु, जि० बालेश्वर, उड़ीसा ने निर्माण कर श्रीश्यामसुन्दर भगवान् की सेवा-प्रकाशित की। आपने श्रीजीव गोस्वामीजी से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था।

सेवाकुञ्ज प्राचीनतम वृक्षावली से युक्त भूखण्ड में मन्दिर भी है, यहाँ श्रीराधाजी की चरणसेवा करते श्रीकृष्ण का चित्रपट है। श्रीहित हरिवंशजी की साधना स्थली यही है।

श्रीराधावल्लभजी—श्रीहित हरिवंश जू के सेवित भगवान् श्रीराधावल्लभजी हैं। इस प्राचीन मन्दिर का निर्माण गोस्वामी श्रीबनचन्द्रजी के शिष्य सुन्दरलाल कायस्थ द्वारा सम्वत् १६८३ में कराया गया। सम्वत् १७२६ में इस मन्दिर को औरंगजेब ने क्षति पहुँचायी। फलतः सम्वत् १८७१ में नवीन मन्दिर का निर्माण कर श्रीराधावल्लभजी के विग्रह की स्थापना की गई। यहाँ श्रीराधा जी की गद्दी सेवा है।

श्रीआनन्दी बाईजी का मन्दिर—परमभक्ता श्रीआनन्दीबाई के लाड़िले छोटे से राधाकृष्ण की मधुर मूर्ति है। आप रामानुज सम्प्रदाय की शिष्या थीं।

श्रीबाँकेविहारीजी—श्रीस्वामी हरिदासजी के सेव्य श्रीबाँकेविहारीजी का मन्दिर स्वामी श्रीहरिदास जी के वंशज गोस्वामियों के सामूहिक प्रयासका प्रतिफल है। ये सारस्वत ब्राह्मण हैं। यहाँ झाँकी दर्शन होते हैं। आजकल यह प्रसिद्ध दर्शनीय देवालय है। यहाँ वैदिक विधि से रहित भाव की सेवा है। यहाँ चरण दर्शन, झूला, मंगला एक-एक दिन ही होते हैं।

श्रीमदनमोहनजी का मन्दिर—यहाँ श्रीसनातन गोस्वामीजी के आराध्य श्रीमदनमोहनजी की सेवा होती थी। इस प्राचीन मन्दिर को व्यापारी रामदास कपूर ने बनवाया था जनश्रुति है कि रामदास कपूर की नौका यहाँ रुक गई। उसने श्रीसनातन गोस्वामीजी को अपनी व्यथा बताई, उनके संकेत से मदनमोहनजी की प्रार्थना करने पर नाव चल पड़ी। इस घटना से रामदास कपूर ने आगरे से लौटकर उसी नौका के धन से इस प्राचीन मन्दिर का निर्माण कराया। औरंगजेब के आतङ्क के समय यह मदनमोहन देवविग्रह जयपुर, फिर वहाँ से करौली के महाराज गोपालसिंह ने मँगवाकर करौली (राजस्थान) में प्रतिष्ठित करवा दी गई। नया मन्दिर सम्वत्

१८७७ में नन्दकुमार वसु ने बनवाया, यहाँ सेवा गौड़ीय वैष्णवाचार्य करते हैं। पुराना मन्दिर वृन्दावन के प्राचीन मन्दिरों में अपना महत्व रखता है।

अंग्रेज मन्दिर—आधुनिकतम, अमेरिकन मिशन द्वारा स्थापित अंग्रेज मन्दिर दर्शनीय है।

श्रीब्रह्मचारीजी का मन्दिर—भजनानन्दी सन्त श्रीगिरिधारी शरणदेवजी ब्रह्मचारी के शिष्य ग्वालियर नरेश जार्ज जीवाजीराव सिंधिया द्वारा श्रीराधागोपालजी का विशाल मन्दिर सम्वत् १९१७ के आस-पास निर्मित हुआ। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य तथा श्रीराधागोपालजी का देवालय दर्शनीय है।

जयपुर वाला मन्दिर—इसे भी अपने गुरु ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी की सत्प्रेरणा से जयपुर के महाराज श्रीमाधवसिंहजी ने सं० १९८१ में कराया। इसमें जयपुर की वस्तुकला का उत्कृष्ट नमूना प्राप्त है। इसमें भी वे ही सन्निधियाँ हैं जो श्रीब्रह्मचारीजी के मन्दिर में हैं।

श्रीगोपीश्वर महादेव—भगवान् श्रीराधाकृष्ण के महारास लीला दर्शनार्थ भगवान् शिव गोपीरूप में पधारे। श्रीकृष्ण ने 'गोपीश्वर' नाम से उनको सम्बोधित किया। वे यहाँ विराजमान हैं।

उक्त परिचय से वृन्दावन दर्शनार्थियों को कुछ सुविधा मिलेगी। जय श्रीराधे!
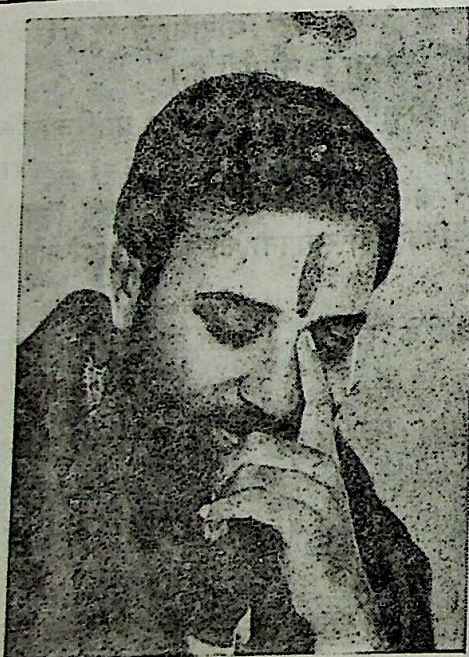
समाचार-स्तम्भ

श्रीमद् जगद्गुरु ब्रह्मदण्डी स्वामीजी महाराज का चातुर्मास्य व्रत

घरवासडीह मठाधीश्वर सन्त सम्राट् श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य पादीय देश-विदेश में सम्मानित सन्त जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीमद् भागवताचार्य ब्रह्मदण्डी स्वामीजी महाराज का इस वर्ष चातुर्मास्य व्रत श्री गंगा नदी के पावन तट पर ग्राम–रूपस महाजी, पो०–ग्यासपुर महाजी, भाया–खुसरूपुर, जिला–पटना (बिहार) में हो रहा है। यहां पर चातुर्मास्य व्रतोपलक्ष्य में श्रीलक्ष्मी-नारायण महायज्ञ ता० २४-११-९३ से लेकर ता० २९-११-९३ तक होगा। गुरु पूर्णिमा महोत्सव यहाँ पर धूमधाम के साथ मनाया गया। जगद् गुरु श्रीब्रह्मदण्डी स्वामीजी महाराज का मंगलमय प्रवचन प्रतिदिन संध्या ४ बजे से लेकर ७ बजे तक रूपस महाजी हाईस्कूल के प्रांगण में होता है।

(क) आने का मार्ग—पटना हार्डिंग पार्क गेट १ से बिहार सरीफ से आने वाला बस द्वारा ग्यास-पुर घाट उतरकर नाव द्वारा गंगा नदी पार कर रूपस महाजी हाईस्कूल पर आना है।

(ख) रेलमार्ग—पटना से बख्तियारपुर आने-जाने वाली पैसेनजर ट्रेन द्वारा करौटा स्टेशन उतरकर ग्यासपुर घाट आना है। वहाँ से नाव द्वारा गंगा नदी पार कर २ मील उत्तर दिशा में रूपस हाईस्कूल पर आना है।

प्रेषक—
यज्ञ समिति, संजीवकुमार सिंह, रूपस महाजी

श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ सम्पन्न

श्रीभगवान वरदराज जी की अहेतुकी कृपा से वरदराज कुँज बड़ा खटला में श्रीश्री १००८ श्रीस्वामी जयकृष्णाचार्य जी बड़ा खटला पीठाधिपति की अध्यक्षता में दिनांक १३-७-९३ से १-८-९३ तक श्रीमद्भागवत ज्ञान यज्ञ सम्पन्न हुआ।

ब्यास पीठ पर बड़ा खटला के शिष्य एवं विद्यालय के आचार्य डॉ० योगेश्वर कृष्ण शास्त्री ने आसीन होकर अमृतमयी वाणी में कथामृत पान कराया।

राधा जी के कीर्तन पर प्रकाश डालते हुये आपने कहा—

'रा' इत्यादान वचनो 'धा' च निर्वाणवाचकः।
यतोऽवाप्नोति मुक्ति च सा च राधा प्रकीर्तिता।।

रा का अर्थ पाना और धा का अर्थ निर्बाण। मोक्ष का पाना ही राधा है। साक्षात् राधा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। अन्तिम दिन साधना की परिपक्वावस्था में, मुक्ति के प्राप्त करने के समय जब कुछ क्षण शेष हों तो राधा कीर्तन ही पार करता है।

प्रेषक—रामेश्वराचार्य (अधिकारी), बड़ा खटला, वृन्दावन

जय जय माता-भारत-माता

भारत कल्याण मंच के सराहनीय कार्य

उत्कल राज्य में श्रीहनुमान जी की मूर्ति स्थापना

बालेश्वर—राज्य शाखा द्वारा दत्तक लिये हुये निकटस्थ ग्राम सारगाँव में १३ अप्रेल ९३ को श्रीहनुमान जी महाराज की प्रतिमा की स्थापना हुई। विशिष्ट समाजसेवी श्रीभागवत पात्र ने श्री हनुमानजी के चरित्र पर प्रेरणात्मक प्रवचन किया। रात्रि को सम्पूर्ण रामायण चलचित्र वीडिओ पर प्रदर्शित किया गया। श्रीसुरेन्द्रकुमार परिडा व श्रीअरुण पात्र के नेतृत्व में कार्यरत अनेकों कार्यकर्ताओं ने इस आयोजन को सफल बनाया।

रथ-यात्रा पर तीर्थ यात्री सेवा

जगन्नाथपुरी - भगवान जगन्नाथ की वार्षिक रथयात्रा पर २१ जून ९३ को प्रतिवर्ष के अनुसार इस वर्ष भी 'तीर्थयात्री-सेवा' का आयोजन किया गया। प्रातः ८ बजे से सायं ५ बजे तक संपन्न इस सेवाकार्य में ५० हजार तीर्थयात्रियों में दही, चीनीं व चिवड़ा का मिश्रण दोनों में भरकर, वितरित किया गया और नींबू की शिकंजी पिलाई गई। राज्य के सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्रीराधेश्याम सिंघानिया (कटक) व वरिष्ठ कर्मयोगी श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डे के नेतृत्व में कार्यरत १०० कार्यकर्तागण गत ५ वर्षों से इस मानव सेवाकार्य का आयोजन कर रहे हैं। ये कार्यकर्तागण विभिन्न जिलों—बालेश्वर, कटक, भुवनेश्वर, पुरी, धेनकानल, कोरापुट से सम्मिलित हुये थे। इस पवित्र कार्य का उद्‌घाटन पुरीस्थित निगमानन्द सारस्वत आश्रम के अध्यक्ष पू० स्वामी सदानन्द सरस्वती ने किया। मंच के उत्कल राज्य संयोजक वरिष्ठतम समाज सेवी श्री सदानन्द जी हैं।

उत्तर प्रदेश में— बाढ़ पीड़ितों को सहायता

बांदा—जिले के बाढ़ प्रभावित गाँव ममसी खुर्द में बाढ़-पीड़ित २५ परिवारों में रजाईयाँ, कम्वल, गर्म कपड़े, दरियां बांटी गई। मंच उत्तर प्रदेश राज्य के प्रचार संयोजक श्रीमुरलीधर व बदौसा के श्री राजकुमार ने बाढ़-क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया।

आषाढ़ी अमावस्या पर सेवा-कार्य

चित्रकूट—सुप्रसिद्ध तीर्थ कामद-गिरि की परिक्रमा करने वाले हजारों तीर्थयात्रियों की मंच के १० कार्यकर्ताओं ने सेवा की। भीड़ को नियन्त्रित करना, जल पिलाना, खोये हुये बच्चों को उनके माता-पिता तक पहुंचाना आदि कार्य किये गये।

कार्यालय—चन्द्रमहल, ठाकुर द्वारा नाका,
पंजाबी चन्दू हलवाई के निकट
बम्बई-२

प्रेषक—
पं. द्वारकाप्रसाद पाटोदिया
राष्ट्रीय महामन्त्री

नोट-उक्त संस्था अपने परिकर सहित पूर्ण परिश्रम से प्राप्त धन का सदुपयोग करते हुये समाज को नवजागृति प्रदान करने में प्रयत्नशील है। निश्चित ही कर्मयोगी श्रीकृष्ण इन्हें साफल्य प्रदान करेंगे। आप भी अपना सहयोग इन्हें दे सकते हैं।

—सम्पादक
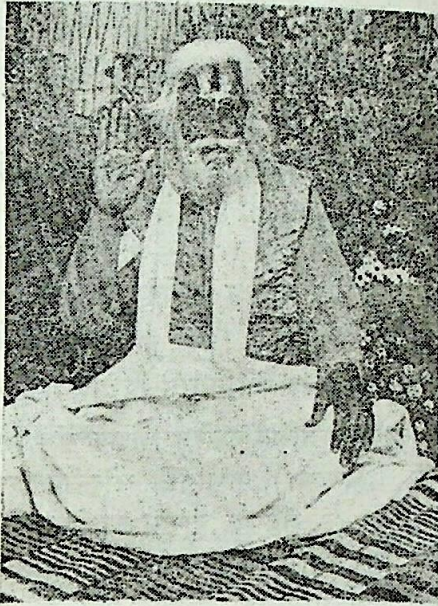
श्रीसन्त के० पी० रामानुजम्

श्रीसन्त के. पी. रामानुजम् का दिव्योत्सव सम्पन्न

श्रीगिरिराज गोवर्धन और राधाकुण्ड के बीच स्थित 'सन्त निवास' के संस्थापक सन्त श्रीके०पी० रामानुजम् का उनकी ८२ वर्ष की आयु होने के और उनके अन्तरयामी भगवान् की प्रेरणा से यह महोत्सव दि०२०-९-९३ शुक्रवार से दि० २८-८-९३ शनिवार तक विविध धार्मिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ।

व्यासपीठ से आचार्य श्रीमनीरामजी शास्त्री सन्तनिवास गोवर्द्धन वालों ने श्रीकृष्ण की मधुर-लीलाओं का रस पान कराया। सन्तजी ने इस महोत्सव में २०० श्रीरामचरित मानस २०० श्री-मद्भागवत एवं इतनी ही श्रीमद्भगवद् गीताजी विद्वान् ब्राह्मणों को वितरित की।

दि० २९-८-९३ को वृहद् भण्डारा जिसमें लगभग १५०० साधुब्राह्मण सद्गृहस्थों ने श्रीगिरि-राज जी का प्रसाद ग्रहण किया। इस महोत्सव में सन्तजी के अनेक शिष्यों ने भी भाग लिया।

प्रेषक—**बाबा राम सरोवरदास जी महाराज,**

ति० स० श्रीअनन्त अल्वान स्वामी (काँची) का वैकुण्ठवास

कांची (दक्षिण भारत) निवासी परम विद्वान् वै०वा० श्रीसम्पत्कुमाराचार्यजी के सुपुत्र श्रीस्वामी अनन्त अल्वान स्वामीका असमय में दि. ७-५-९३ को वैकुण्ठवास हो गया। इस समय वे मात्र३८वर्ष के थे। आपने अपने पीछे दो पुत्र, पुत्री और विधवा माताजी को छोड़ा है। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्रीरामानुज आयु १३ वर्ष, द्वितीय पुत्र का नाम श्रीसम्पत्कुमार स्वामी आयु ८ वर्ष और पुत्री मात्र ५वर्ष की है। धर्मपत्नी रमादेवी की आयु मात्र ३५ वर्ष है। विधवा माताजी की आयु ८० वर्ष की है। अत: बच्चों की देखरेख का भार श्रीरमादेवी पर ही आपड़ा है। आपका दि० १६-५-९३ को सपिंडी श्राद्ध और २०-५-९३ को वैकुण्ठोत्सव सम्पन्न हो गया।

श्रीस्वामी सम्पत्कुमाराचार्यजी ने गुजरात प्रान्त में श्रीवैष्णवता का यथार्थ प्रचार प्रसार किया। पिताश्री के वाद श्रीअनन्त अल्वान भी गुजरात में गुजराती भाषा में श्री वैष्णवधर्म का प्रचार करते थे। इसी से प्रभावित तारपुर के श्रीवैष्णवों ने इस समय एक मोटी धनराशि प्रदान कर योग्य स्थान में धन का सदुपयोग किया, यही नहीं दोनों पुत्रों के नाम धनराशि जमा की तथा श्रीवैकुण्ठोत्सव के लिये भी बीस हजार रुपये की सहायता की। भावनगर के वैष्णव मण्डल ने यथाशक्य अच्छी धनराशी की व्यवस्था की है। ये सभी भक्त साधुवाद के सच्चे अधिकारी हैं। इस समय 'अनन्त सन्देश' परिवार भी श्रीगोदारंगमन्नार प्रभु से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति एवं पीडित परिवारो जनों को धैर्यावलम्ब प्रदान करें। ओम् शान्तिः

—सम्पादक

श्रद्धांजलियां

'अनन्त सन्देश' के सम्पादक मण्डल के विद्वान् सदस्य डॉ० रामकृष्ण आचार्य एम० ए०, पी० एच० डी०,डी० लिट् (वेदान्ताचार्य) का १६ जून १९९३ को आकस्मिक वैकुण्ठवास हो गया। धार्मिक, साहित्यिक, राजनयिक. स्वजनों, सुहृदों. बन्धु-बान्धवों के हजारों समवेदनात्मक-पत्र प्राप्त हुये हैं, उनमें से कतिपय सज्जनों का नामोल्लेख किया जारहा है .

- आपकेपितृपाद के परमपदगमन वृत्तान्त से अवगत होकर हतप्रभ होगया। 'तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि'....उनके अभाव से शिक्षा जगत तो प्रभावित हुआ ही है विशेष रूप से श्रीवैष्णव जगत उनकी अनुपस्थिति को चिरकाल तक अनुभव करता रहेगा। —श्रीगोवर्द्धनरंगाचार्य अध्यक्ष—श्रीरङ्गमन्दिर वृन्दावन
- महान् विभूतियों ने सदैव गतिशीलता को नतमस्तक होकर स्वीकार किया है। सन्तोष करना पड़ता है। —श्रीस्वामी राधाकृष्णाचार्य, श्रीनिवास विद्यालय, वृन्दावन
- शोकप्रस्ताव— श्रीरामनिहोरेसिंह महासचिव, राजाबलवन्तसिंह कालेज शिक्षक संघ, आगरा
- शोक समवेदना—श्रीभगवान्शंकर रावत, संसद-सदस्य (लोकसभा), सभापति लोकलेखा समिति २४३, जयपुर हाउस कालोनी, आगरा
- आचार्यजी जैसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् के निधन से न केवल परिजनों अपितु समूचे साहित्य जगत की एक अपूरणीय क्षति हुई है। —श्रीप्रेमा राव सहायक महाप्रबन्धक सिंडिकेट बैंक, नई दिल्ली
- अपने बालवन्धु एक गुरु के शिष्य श्रीरामकृष्ण आचार्य के अतर्कित वैकुण्ठवास के समाचार से मर्मान्तिक पीड़ा हुई **'अनाथा विदुषां गोष्ठी, अनाथा सुरभारती। अनाथा ग्रन्थमर्यादा रामकृष्ण-दिवंगते'** ॥ व्यथित–श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी, राधारमण मन्दिर, वृन्दावन।
- शोक पत्र— श्रीराजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी 'हिन्दीसाहित्यकार' सिविल लाइन्स, आगरा
- शोक–महान् शोक-पत्र, 'हम बड़े बैठे रहे छोटे चले गये,'....मर्त्यलोक से वैकुण्ठलोक में पदोन्नति करली। आपका ही–श्रीकेदारनाथ वैद्य, श्रीराधाकृष्ण औषधि भण्डार, फिरोजाबाद
- शोक–संवेदना एवं श्रद्धाञ्जलि-पत्र, डॉ० भूदेवप्रसाद मिश्र, गान्धीनगर भरथना इटावा।
- शोकसंवेदना-पत्र, आचार्यजी के असामयिक देहावसान से स्तब्ध रह गया। वे सच्चे भागवत थे, तभी तो योगिनी एकादशी को परमपद पधारे। –श्रीकृष्णकान्त शुक्ल, प्रो० बरेलीकालेज, बरेली।
- शोकसंवेदनात्मक-पत्र, श्रीगोपीकिशन गोस्वामी, मन्दिर गोपीनाथ जी चौबाजार, पीलीभीत
- हार्दिक-शोक संवेदनात्मक कार्ड— श्रीसतीशजी, हकीमगंज, आगरा–३।
- श्रीजयदेव तिवारी वैद्य एटा, । श्री ओम्कुमार जैन। फिरोजाबाद, श्रीराजकुमार आगरा।
- 'सच ही सच' साप्ताहिक पत्र के यशस्वी सम्पादक श्रीसत्येन्द्र दीक्षित आगरा ने 'जिनकी अब स्मृति ही शेष है, हैंडिग एवं आचार्य जी का चित्र देकर अपनी, समस्त परिवार एवं समस्त स्टाफ की अश्रुपूरित श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।
- **आषाढे त्वसितेपक्षे व्ययाब्दे बुधवासरे। एकादश्याञ्च योगिन्यां रामकृष्णः दिवंगतः ॥१॥**
द्विसप्ततितमे वर्षे पुण्याहे पुण्यपर्वणि। आचार्य-रामकृष्णो वै स्वाचार्यपदवीमगात् ॥२॥
—केशवदेव शास्त्री, सम्पा० अनन्त-सन्देश, वृन्दावन

हम सभी के आभारी हैं। धन्यवाद। डा० लक्ष्मीकान्त शर्मा, ६/३ ई. शास्त्रीनगर-खंदारी रोड, आगरा

आनन्दः" "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्" इत्यादिव्यतिरेकनिर्देशाच्च नानन्दमात्रं ब्रह्म अपि त्वाऽऽनन्दि, ज्ञातृत्वमेव ह्यानन्दित्वम् ।

यदिदमुक्तम्–"यत्र हि द्वैतमिव भवति" "नेह नानास्ति किंचन" मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत्" इति भेदनिषेधो बहुधा दृश्यते इति, तत् कृत्स्नस्य जगतो ब्रह्मकार्यतया तदन्तर्यामिकतया च

स्मारयति—अस्येति, यथा "सत्यं ज्ञानमनन्तम्" इत्युक्तज्ञानस्वरूपस्यापि ब्रह्मणः "यः सर्वज्ञः" इत्यादिना ज्ञातृत्वमुच्यते तथा "आनन्दो ब्रह्म" इत्युक्तानन्दस्वरूपस्यैव ब्रह्मणः "स एको ब्रह्मण आनन्दः" इतिब्रह्मानन्दयोर्भेदनिर्देशेन ब्रह्मण आनन्दित्वम्=आनन्दाश्रयत्वमप्युच्यते इत्याह—तद्वदेवेति । आनन्दित्वस्वरूपमाह—ज्ञातृत्वमेवेति, अनुकूल ज्ञानमेवानन्द इति ज्ञातृत्वमेवानन्दित्वमित्यर्थः ।

ननु "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतर पश्यति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाऽभूत् तत् केन कं पश्येत्" इतिश्रुत्या पारमार्थिकाद्वैतावस्थायां भेदो निषिध्यते तथा "नेह नानास्ति"इत्यपि भेदनिषेधः "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति" इत्यनेन भेददर्शनोत्पत्तिरप्युच्यते इति कथं भेदः पारमार्थिकः सिध्येत् तथा चौद्वैतमेव सिद्धमित्युक्तमनुवदति–यदिदमिति, उत्तरमाह–तदिति, तत् परिहृतमित्यन्वयः । यथा कार्यकारणयोरभेदो भवति तथा प्रपञ्चब्रह्मणोरभेदो यथा च शरीरात्मनोरभेदो भवति तथा ब्रह्मा-

---

उपपन्न नहीं हो सकती है । इत्यर्थः । ज्ञानस्वरूप ब्रह्म के पूर्व प्रतिपादित ज्ञातृत्व का स्मरण कराते हैं—अस्येति, जिस प्रकार 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' द्वारा उक्त ज्ञानस्वरूप ब्रह्म का भी "यः सर्वज्ञ" इत्यादि श्रुति द्वारा ज्ञातृत्व अर्थात् ज्ञाता होना कहा जाता है, उसी प्रकार—'आनन्दो ब्रह्म' द्वारा उक्त आनन्द स्वरूप ब्रह्म का ही 'स एको ब्रह्मण आनन्दः' इस वचन द्वारा ब्रह्म और आनन्द भेद निर्देश होने से ब्रह्म आनन्दी=आनन्दवान् अर्थात् आनन्दाश्रय सिद्ध होता है—यह कहते है—तद्वदेवेति, आनन्दित्व-स्वरूप बतलाते हैं—ज्ञातृत्वमेवेति, अनुकूल ज्ञान ही आनन्द है–इति, ज्ञातृत्व ही आनन्दित है इत्यर्थः ।

कहो कि—यहाँ द्वैत जैसा होता है वहाँ एक दूसरे को देखता है और जहाँ सब आत्मा ही है वहाँ कौन किसको देखे— इस श्रुति द्वारा पारमार्थिक अद्वैत अवस्था में भेद का निषेध किया जाता है, तथा 'नेह नानास्ति' यह भी भेद का ही निषेध है—'मृत्यु से वह मृत्यु को प्राप्त करता है'—इस भेद दर्शन की क्षति भी कही जाती है—अतः भेद पारमार्थिक कैसे सिद्ध हो सकता है, तथा च अद्वैत ही सिद्ध है—इसका अनुवाद करते हैं—यदिदमिति । उत्तर देते हैं—तदिति–तत्=वह, परिहृत= निरस्त हुआ–इत्यन्वयः । जैसे कार्य और कारण का अभेद होता है वैसे ही प्रपञ्च और ब्रह्म का भी अभेद है और जिस प्रकार शरीर तथा आत्मा का अभेद होता है उसी प्रकार ब्रह्म के अन्तर्यामी होने

तदात्मकत्वेनैक्यात् तत्प्रत्यनीकं नानात्वं प्रतिषिध्यते न पुनः—"बहुस्यां प्रजायेय" इति बहुभवनसंकल्पपूर्वकं ब्रह्मणो नानात्वं श्रुतिसिद्धं प्रतिषिध्यते इति परिहृतम्। नानात्वनिषेधादियमपरमार्थविषयेति चेत् ? न--प्रत्यक्षादिसकलप्रमाणानवगतं नानात्वं दुरारोहं ब्रह्मणः प्रतिपाद्य तदेव बाध्यते इत्युपहास्यमिदम्। यदा ह्येवैष

न्तर्यामिकतयापि प्रपञ्चब्रह्मणोरभेद उपपद्यते तादृशाभेदतात्पर्येणैव तत्प्रत्यनीकम्=एकत्वविरुद्ध नानात्वमत्र निषिध्यते न तु स्वरूपभेदोपि प्रतिनिषिध्यते भेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, एतदेवाह—न पुनः रिति, "बहुस्याम्" इतिश्रुतिप्रतिपाद्यस्य नानात्वस्योक्तश्रुतिभिर्निषेधासंभवाद् अन्यथा परस्परं विरोध एव स्यात्। इति=इत्यनेन समाधानेनायमपि पूर्वपक्षः परिहृत इत्यन्वयः। ननु "नेह नानास्ति" इत्यादिश्रुतिर्हि अलौकिकविषयप्रतिपादकत्वात् परमार्थविषयास्ति ततश्चाऽद्वैतस्य परमार्थत्वे प्राप्ते नानात्वनिषेधविरोधात् इयम्="बहुस्याम्" इतिश्रुतिरपरमार्थविषया जातेति तद्बोध्यभेदस्य मिथ्यात्वमेव स्यादित्याशङ्कते—नानात्वेति। परिहरति—नेति, "बहुस्याम्" इत्यनेन ब्रह्मणो नानात्वम्=बहुत्वं प्रतिपाद्य "नेह नानास्ति" इत्यनेन तदेव बाध्यते इति कथनमुपहासयोग्यमेवेत्यन्वयः, तथा च "नेह नानास्ति' इत्यादिभिरुक्तरूप एवाभेदः प्रतिपाद्यते न तु सर्वथा भेदनिषेध इत्यर्थः। ब्रह्मणो बहुभवनं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं नास्तीत्युक्तम्—प्रमाणानवगतमिति, तर्कविषयोपि नास्तीत्युक्तम्—दुरारोहमिति, दुरारोहम्=बुद्ध्यविषयः।

से प्रपञ्च एवं ब्रह्म का अभेद उपपन्न होता है—ऐसे अभेद के तात्पर्य से ही एकत्व के विरोधी नानात्व का यहाँ निषेध किया गया है, स्वरूप भेद का निषेध नहीं है क्योंकि भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसे कहते हैं—न पुनरिति, 'बहुस्याम्' इस श्रुति के प्रतिपाद्य नानात्व का उक्त श्रुतियों से निषेध असम्भव है, अन्यथा आपस में विरोध ही होगा। इति=इस, समाधान से यह पूर्वपक्ष भी परिहृत हो जाता है—इत्यन्वयः। कहो कि—नेह नानास्ति' इत्यादि श्रुति अलौकिक विषय प्रतिपादक होने से परमार्थ विषय वाली है—इस प्रकार अद्वैत ही परमार्थ है यह प्राप्त होने पर नानात्व निषेध का विरोध होने से 'बहुस्याम्' यह श्रुति अपरमार्थ विषयक हो जाती है—इसका प्रतिपाद्य भेद फिर मिथ्या ही होगा ऐसी आशङ्का करते हैं—नानात्वेति। परिहार करते—नेति, 'बहुस्याम्' इसके द्वारा ब्रह्म का नानात्व अर्थात् बहुत्व प्रतिपाद्य है, 'नेन नानास्ति' इसके द्वारा वही बहुत्व बाधित होता है—यह कथन उपहास=हँसी के योग्य ही है—इत्यन्वयः। तथा च—'नेह नानास्ति' इत्यादि द्वारा उक्त रूप ही अभेद प्रतिपादित होता है, न कि सर्वथा भेद का निषेध किया जाता है—इत्यर्थः। 'ब्रह्म' का बहुभवन अर्थात् अनेक होना प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध नहीं है—यह कहा है—प्रमाणानवगतमिति, तर्क का भी विषय नहीं है—दुरारोहमिति, दुरारोह का अर्थ—बुद्धि का अविषय है।

"यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति" इति ब्रह्मणि नानात्वं पश्यतो भयप्राप्तिरिति यदुक्तम्, तदसत्—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" इति तन्नानात्वानुसन्धानस्य शान्तिहेतुत्वोपदेशात्, तथा हि—सर्वस्य जगतस्त-दुत्पत्तिस्थितिलयकर्मतया तदात्मकत्वानुसन्धानेनात्र शान्तिर्विधीयते, अतो यथावस्थितदेव-

---

ननु यदा ह्येष जीवात्मा स्वस्मिन् एतस्मिन् ब्रह्मणि च दरम्=अल्पमपि अन्तरम्=भेदं कुरुते=मन्यते यस्तस्य भेदज्ञानवतो भयं भवतीति श्रुत्या ब्रह्मणि नानात्वम्=भेदं पश्यतो भयप्राप्ति-रुक्तेति विज्ञायते नानात्वं मिथ्यैव अन्यथा नानात्वदर्शनेन भयप्राप्तिर्नोच्येतेत्याशङ्क्याह—यदेति । परिहारमाह—तदसदिति, इदं सर्वं जगत् ब्रह्म=ब्रह्मात्मकमस्ति सतो तज्ज्ञानमस्तीति उद्वेगभयादेः कारणं च नास्तीति शान्त उपासीत जगतो ब्रह्मात्मकत्वोपासनया उद्वेगादिकं त्यक्त्वा शान्तो भवेदिति श्रुत्या तत्=ब्रह्मणो नानात्वानुसन्धानस्य=कार्यभूतजगद्रूपेणानुसन्धानस्य शान्तिहेतुत्वमुपदिश्यते इत्यन्वयः, अत्र तज्जलानमिति वक्तव्ये तज्जलानिति । यदुक्त तत्र विभक्तिभूताऽम्भागस्यार्षो लोपो विज्ञेयः, अर्थस्तु तज्जलानमिति, तस्माद् ब्रह्मणो जातत्वात् तज्जं तस्मिन् लीयते इति तल्लं तेन अनिति जीवतीति तदनं पदत्रयस्य समाहारेण तज्जलानमिति सिद्ध तच्च जगद्विशेषण तथैव श्रूयते "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादिरित्यनुसन्धेयम् । स्वयमेव श्रुत्यभिप्रायमाह—तथा हीति,

---

कहो कि जब यह जीवात्मा अपने में और इस ब्रह्म में थोड़ा भी भेद मानता है तब उस भेद-ज्ञान वाले को भय होता है इस श्रुति द्वारा ब्रह्म में भेद देखने वाले के लिए भय की प्राप्ति कही गई है, यह ज्ञात होता है, नानात्व मिथ्या ही है, अन्यथा नानात्व के दर्शन से भय को प्राप्ति नहीं कहते—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—यदेति । आशङ्का का परिहार करते हैं—तदसदिति—यह समस्त जगत् ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मात्मक है, जब यह ज्ञान है तब उद्वेग-भय आदि का कोई कारण नहीं रहने से 'शान्त उपासीत्' इस श्रुति द्वारा जगत् की ब्रह्मात्मक रूप में उपासना करके, उद्वेग आदि से रहित होकर शान्त होना कहा गया है । ब्रह्म के नानात्वानुसन्धान अर्थात् कार्यभूत जगत् के रूप में अनुभव को शान्ति का हेतु कहा गया है । इत्यन्वयः । यहाँ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'तज्जलानिति शान्त उपासीत' में 'तज्जलानमिति' के स्थान पर 'तज्जलानिति' कहा गया है, इस कथन में विभक्ति 'अम्' भाग का आर्षलोप जानना चाहिए, 'तज्जलानम्' का अर्थ है—उस ब्रह्म से उत्पन्न 'तज्जं' कहा जाता है. उसमें लय को प्राप्त होने वाला 'तल्लं' कहलाता है, उससे जीने वाला 'तदनं' होता है, इन तीनों पदों-तज्जं तल्लं और तदनं—का समाहार होने पर 'तज्जलानम्' सिद्ध होता है, यह 'तज्जलानम्' पद जगत् का विशेषण है—यह श्रुति सिद्ध है—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि अनुसन्धान योग्य है—जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होता है, उसी में लय को प्राप्त होता है तथा उससे ही जीवित रहता है । स्वय

तिर्यङ्मनुष्यस्थावरादिभेदभिन्नं जगद् ब्रह्मात्मकमित्यनुसन्धानस्य शान्तिहेतुतया अभय-प्राप्तिहेतुत्वेन न भयहेतुत्वप्रसङ्गः ।

एवं तर्हि "अथ तस्य भयं भवति" इति किमुच्यते ?, इदमुच्यते—"यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति" इत्यभयप्राप्तिहेतुत्वेन ब्रह्मणि या प्रतिष्ठाऽभिहिता तस्या विच्छेदे भयं भवतीति यथोक्त

तदुत्पत्तिस्थितिलयकर्मतया=ब्रह्मकर्तृकोत्पत्तिस्थितिलयकर्मत्वेन, जगतस्तदात्मकत्वानुसन्धानेन= ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धानेन, अत्र="सर्वं खल्विदम्" इत्यादिश्रुतौ । स्वाभिप्रायमाह—अत इति, यदि जगदनेकात्मकं स्यात्तदा ह्यन्यात्मकादन्यात्मकस्य भयं संभवेदपि न चैवमस्ति किं तु सर्वं जगदेक-ब्रह्मात्मकमेनेत्यनुसन्धानेन भयं निवर्ततेऽभयं च भवतीति ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धानं शान्तिकारणमित्यु-च्यते । तथैकमातापितृजन्यत्वाद् भ्रातॄणां परस्परतो न भयं भवति तथा सर्वस्य प्रपञ्चस्यैकब्रह्मा-त्मकत्वात् कुतोपि कस्यापि ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धानवतो भयसम्भावना नास्तीत्यर्थः ।

ननु मदुपस्थापिताम् "यदा ह्येवैषः" इतिश्रुतिं त्यक्त्वा 'सर्वं खल्विदम्" इतिश्रुतिर्व्याख्याता न चैतद्युक्तमित्याह-एवमिति, नानात्वदर्शनवतो भय भवतीतिश्रुत्योच्यते तच्च त्वन्मतविरुद्धमित्यर्थः । उत्तरमाह-इदमिति, "यदा ह्येवैष" इतिश्रुत्या वक्ष्यमाणोर्थः प्रतिपाद्यते इत्यन्वयः । अदृश्ये—जड-भिन्ने अनात्म्ये=कर्मकृतशरीररहिते अनिरुक्ते=देवमनुष्यादिप्राकृतनामरहिते अनिलयने=आधार-

---

ही श्रुति का अभिप्राय बतलाते हैं—तथाहीति, ब्रह्म कर्तृक, उत्पत्ति, स्थिति और लय का कर्म, जगत् होने से, जगत् ब्रह्मात्मक है—इस अनुसन्धान द्वारा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस श्रुति में शान्ति की प्राप्ति कही गई है । अपना अभिप्राय कहते हैं —अत इति, यदि जगत् अनेकात्मक हो तब अन्यात्मक के लिए अन्यात्मकान्तर से भय की प्राप्ति सम्भव हो सकती है, परन्तु यहाँ ऐसी बात है ही नहीं—समस्त जगत् की आत्मा एक ही ब्रह्म है । इसके अनुसन्धान से भय दूर होता है तथा अभय की प्राप्ति होती है—अतएव ब्रह्मात्मकत्वानुसन्धान को शान्ति का कारण कहा जाता है । जिस प्रकार एक माता-पिता की सन्तान—भाइयों को परस्पर एक दूसरे से भय नहीं होता, उसी प्रकार समस्त प्रपञ्च के एक ब्रह्मात्मक होने से, किसी से किसी को भी, जिसे कि ब्रह्मात्मकत्व का अनुसन्धान है—भय की सम्भावना नहीं है—इत्यर्थः ।

कहो कि मेरे द्वारा उपस्थित की गई 'यदा ह्येवैषः' इस श्रुति को त्यागकर 'सर्वं खलु-इदम्' श्रुति की व्याख्या आपके द्वारा की गई है, यह ठीक नहीं है—एवमिति, 'नानात्व देखने वाले को भय होता हैं' श्रुति का यह कथन आपके मत के विरुद्ध है—इत्यर्थः । इसका उत्तर कहते हैं—इदमिति, 'यदाह्येवैषः' इस श्रुति द्वारा वक्ष्यमाण अर्थ प्रतिपादिन होता है—यह अन्वय है । अदृश्य अर्थात् जडभिन्न कर्मानुसार प्राप्त होने वाले शरीर से रहित, देव मनुष्य आदि प्राकृत नाम रूप से रहित,

महर्षिभिः— "यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते ।
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा च विक्रिया ॥"
इत्यादि, ब्रह्मणि प्रतिष्ठाया अन्तरम्=अवकाशो विच्छेद एव ।

रहिते तथा चानेन पदत्रयेण बद्धमुक्तनित्यमुक्तेतित्रिविधजीवेभ्यो व्यावृत्तिः सिद्धा एवंभूते एतस्मिन्= ब्रह्मणि यदा ह्येषः=जीवात्मा अभयं प्रतिष्ठाम्=अभयकरतदेकतानताम्=निरन्तरब्रह्मचिन्तनं विन्दते=लभते तदा सः=जीवात्मा अभयं गतो भवति=अभयं प्राप्नोति इति श्रुत्याऽभयप्राप्तिकारण-त्वेन ब्रह्मणि जीवस्य या प्रतिष्ठा=तदेकतानतोक्ता तस्या विच्छेदम् "यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते" इतिवाक्येनाऽनूद्य तादृशविच्छेदे जाते "अथ तस्य भयं भवति" इतिवाक्येन भयं भवतीत्युच्यते, तथा च "सर्वं खल्विदम्" इत्युक्तब्रह्मात्मकत्वानुसन्धानस्यापि विच्छेदे "अथ तस्य भयम्" इतिश्रुत्या भयमुच्यते इत्येवं पूर्वग्रन्थेनान्वयः । उक्तविच्छेदस्य भयहेतुत्वे गरुडपुराणवाक्यं प्रमाणयति—यन्मुहूर्त-मिति, सा=वासुदेवाऽचिन्तनमेव हानिः=इष्टहानिः, छिद्रम्=अनिष्टप्राप्तिरन्ध्रम्, भ्रान्तिः=अज्ञान-कार्यम्, विक्रिया=अनिष्टप्रदम् । ब्रह्मणि प्रतिष्ठायाः श्रुत्युक्तम् अन्तरम्=अवकाश एव स च विच्छेद एव न तु नानात्वलक्षणो भेद स्तादृशविच्छेदेन हि श्रुत्या भयमुच्यते न तु भेदज्ञानेन भयमुच्यते येन भेदस्य भेदविशिष्टप्रपञ्चस्य च मिथ्यात्वं ब्रह्मात्मनोरभेदश्च स्याद् इत्यन्वयः ।

आधार रहित इन तीन पदों द्वारा बद्ध, मुक्त तथा नित्यमुक्त जीवों से ब्रह्म (परमात्मा) की व्यावृत्ति सिद्ध है, इस प्रकार के ब्रह्म विषयक, अभय करने वाले, निरन्तर चिन्तन को जीवात्मा प्राप्त कर लेता है तब वह (जीवात्मा) अभय हो जाता है । श्रुति द्वारा अभय प्राप्ति के कारण के रूप में, जीव की ब्रह्म में जो निरन्तन चिन्तन स्वरूपा प्रतिष्ठा कही गई है, उसके विच्छेद का 'यदा ह्येवैष एत-स्मिन्नुदरमन्तरम् कुरुते' द्वारा अनुवाद करके, तादृश विच्छेद के होने पर 'अथ तस्य भयं भवति' वाक्य भय होना बतलाता है, तथा च 'सर्वं खल्विदम्' से कहे गये ब्रह्मात्मकत्व के अनुसन्धान का भी विच्छेद होने पर 'अथ तस्य भयम्' श्रुति भय होना कहती है—इस प्रकार का पूर्वग्रन्थ के साथ अन्वय है ! उक्त विच्छेद भय का हेतु है, इसमें गरुड पुराण का प्रमाण देते हैं—यन्मुहूर्तमिति, भगवान् वासुदेव का चिन्तन न करना ही इष्ट की हानि है, जिस क्षण अथवा मुहूर्त में वासुदेव का चिन्तन नहीं किया जाता वही हानि है, महान् छिद्र (अनिष्ट प्राप्ति रूप) है, अज्ञान कार्य भ्रान्ति है, अनिष्ट दायिनी विक्रिया (विकार) है । ब्रह्म प्रतिष्ठा श्रुत्युक्त अन्तर (अवकाश) ही विच्छेद है, नानात्व रूप भेद विच्छेद नहीं हैं, इस प्रकार के विच्छेद से श्रुति भय कहती है, भेदज्ञान से भय नहीं कहती है, जिससे कि भेद और भेद विशिष्ट प्रपञ्च का मिथ्या होना तथा ब्रह्म और जीवात्मा का अभेद (सिद्ध) हो सके । इत्यन्वयः ।

यदुक्तम्—"न स्थानतोपि" इति सर्वविशेषरहितं ब्रह्मेति वक्ष्यतीति, तन्न—सविशेषं ब्रह्मेत्येव हि तत्र वक्ष्यति। "मायामात्रं तु" इति च स्वाप्नानामप्यर्थानां जागरितावस्थानुभूतपदार्थवैधर्म्येण मायामात्रत्वमुच्यते इति पारमार्थिकत्वमेव वक्ष्यति।

स्मृतिपुराणयोरपि निर्विशेषज्ञानमात्रमेव परमार्थोऽन्यदऽपारमार्थिकमिति प्रतीयते इति यदभिहितम्, तदसत्—

"यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ॥१॥"

"न स्थानतोपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि" इति तृतीयाध्यायद्वितीयपादसूत्रेणापि 'परस्य ब्रह्मण उभयम् = प्राकृतहेयगुणरहितत्वं दिव्यगुणवत्त्वं च सर्वत्रोपलभ्यते इति जीवादिलक्षणनिवासस्थानतोपि ब्रह्मणि दोषा न प्राप्नुवन्ति' इतिप्रतिपादनेन सविशेषमेव ब्रह्मेति वक्ष्यति न तु निर्विशेषं ब्रह्मेति न सूत्रेणापि निर्विशेषं ब्रह्म सिध्यतीत्याह—यदुक्तमिति। "मायामात्रं तु कात्स्न्र्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्" इतितृतीयाध्यायद्वितीयपादसूत्रेण च न प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वमुच्यते किं तु जागरितावस्थानुभूतपदार्थापेक्षया वैलक्षण्यं स्वाप्नपदार्थानामुच्यते—मायापदेन तथा च न स्वाप्नपदार्थानामपि मिथ्यात्वं येन तद्दृष्टान्तेन प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वं स्यादित्याह—मायामात्रमिति। यदा हि स्वाप्नपदार्थानामपि पारमार्थिकत्वं वक्ष्यति तदा जागरितावस्थायामनुभूयमानपदार्थानां पारमार्थिकत्वं तु कैमुतिकन्यायप्राप्तमेवेत्यर्थः।

श्रुत्या निर्विशेषं न सिध्यतीति प्रतिपाद्य स्मृतिपुराणाभ्यामपि न सिध्यतीत्याह—स्मृतीति।

'नस्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि' इस सूत्र (ब्रह्मसूत्र तृतीय अध्याय के द्वितीयपाद में स्थित) से भी परब्रह्म का प्राकृत हेय गुण रहित होना तथा दिव्यगुणों से युक्त होना प्राप्त होता है, जीव आदि रूप निवास स्थान द्वारा भी ब्रह्म में दोष प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसा प्रतिपादन करते हुए ब्रह्म को सविशेष ही कहेंगे, ब्रह्म को निर्विशेष नहीं कहेंगे, सूत्र द्वारा भी ब्रह्म निर्विशेष सिद्ध नहीं होता है, यह कहते हैं—यदुक्तमिति। 'मायामात्रं तु कात्स्न्र्येनाभिव्यक्तरूपत्वात्' इस सूत्र से जो तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद में स्थित है—प्रपञ्च मिथ्या है यह नहीं कहा जाता किन्तु जाग्रत् अवस्था में अनुभव किये गये पदार्थों की अपेक्षा स्वप्न के पदार्थों की विलक्षणता माया पद से कही जाती है, इस प्रकार स्वप्न पदार्थ भी मिथ्या नहीं है, अतः उसके दृष्टान्त से भी प्रपञ्च को मिथ्या नहीं कहा जा सकता। इसे कहते हैं—माया मात्रमिति. जब स्वप्न के पदार्थों को भी पारमार्थिक (वास्तविक) कहेंगे तब जाग्रत् अवस्था में अनुभव किये जाने वाले पदार्थों की पारमार्थिकता (वास्तविकता) के बारे में कहने की क्या आवश्यकता है, वह तो स्वतः ही सिद्ध है। इत्यर्थः।

श्रुति द्वारा निर्विशेष की सिद्धि नहीं होती है इसका प्रतिपादन करके, स्मृति और पुराणों से भी निर्विशेष की सिद्धि नहीं होती है—यह कहते हैं—स्मृतीति, सबसे पहले भगवद् गीता स्मृति का

"मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥२॥"
"न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥३॥"
"अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥४॥"
"मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥५॥"
"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥६॥"
"उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥७॥"

प्रथमं भगवद्गीता स्मृतेः सविशेषब्रह्मपरत्वं प्रदर्शयति—यो मामिति, अत्र भगवता स्वस्य लोकमहेश्वरत्वेन ज्ञेयत्वमुक्तं लोकमहेश्वरश्च सविशेष एवेत्यर्थः ॥१॥ सर्वभूताश्रयत्वेनापि सविशेषत्वमेव प्राप्तम्, तेषु=भूतेषु नाहमवस्थितः=भूतपरिमाणको नास्मि किं तु भूतेभ्योपि महानस्मीत्यर्थः ॥२॥ न चेति—लोके भारवाहकवद् भूतवाहको नास्मि किं तु स्वकीयेश्वरत्वसामर्थ्येन भूतभृत्=भूतेषु व्यापकोस्मि, अहमेव च भूतभावनः=भूतोत्पादकोस्मीत्यर्थः ॥३॥ प्रभवः=उत्पत्तिस्थानम्, प्रलयः=लयस्थानम् ।४ सूत्रे यथा मणिगणास्तिष्ठन्ति तथेदं सर्वं जगत् मयि तिष्ठति, व्यापकोस्मीत्यर्थः ॥५॥ विष्टभ्येति—मदीयव्यापकस्वरूपस्यैकस्मिन् प्रदेशे सर्वमिदं जगत्तिष्ठतीत्यर्थः ॥६॥ यो लोकत्रयेपि व्यापकोस्ति स उत्तमः पुरुषः सर्वजीवेभ्योऽन्य एव स एव परमात्मेत्युच्यते इत्यर्थः, अत्र जीवात्मपरमात्मनोर्भेदः स्पष्टमेवोक्त इतिभावः ॥७॥

सविशेष ब्रह्म के प्रतिपादन में प्रमाण देते हैं—यो मामिति, यहाँ भगवान् ने स्वयं अपने लिए लोक महेश्वर के रूप में ज्ञेय बतलाया है, लोक महेश्वर सविशेष ही हो सकता है। इत्यर्थः ॥१॥ समस्त भूतों का आश्रय होने से ही भी ब्रह्म सविशेष ही प्राप्त होता है। भूत-परिमाण वाला मैं (ब्रह्म) नहीं हूं, किन्तु भूतों से भी महान् हूँ। इत्यर्थः ॥२॥ संसार में भार ढोने वाले की तरह भूतों को ढोने वाला नहीं हूँ, किन्तु अपनी सामर्थ्य ईश्वरता से भूतों में व्याप्त हूँ—मैं स्वयं व्यापक हूँ, और मैं ही भूतों को उत्पन्न करने वाला हूँ। इत्यर्थः ॥३॥ मैं ही समस्त जगत् का उत्पत्ति स्थान और लय स्थान हूँ ॥४॥ हे अर्जुन मुझ से पृथक् कुछ भी नहीं है, धागे में जैसे मणि पिरोये हुए रहते हैं, वैसे ही समस्त जगत् मुझ में स्थित रहता है, मैं व्यापक हूँ। इत्यर्थः ॥५॥ विष्टभ्येति—मेरे व्यापक स्वरूप के एक प्रदेश में यह समस्त जगत् स्थित है—इत्यर्थः ॥६॥ जो तीनों लोकों में व्याप्त है वह उत्तम पुरुष समस्त जीवों से अन्य है यह भी परमात्मा कहा जाता है। इत्यर्थः। यहाँ पर जीव और परमात्मा का भेद स्पष्ट ही कहा गया है—इति भावः ॥७॥

"यस्मात् क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥८॥"
"स सर्वभूतप्रकृतिं विकारान् गुणादिदोषांश्च मुने व्यतीतः ।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद् भुवनान्तराले ॥९॥
समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशोद्धृतभूतवर्गः ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥१०॥
तेजोबलैश्वर्यमहावबोधस्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे ॥११॥

यतोहं क्षराक्षराभ्याम्=बद्धमुक्तयावज्जीवेभ्य उत्कृष्टोस्मि अत एव लोको वेदश्च मां पुरुषोत्तम इति वदति, अनेनापि भेदः सिद्धः ॥८॥ इतः परं विष्णुपुराणस्य सविशेषब्रह्मपरत्वं प्रदर्शयति—स सर्वेति, प्रधानाख्यसर्वभूतप्रकृत्यपेक्षया महदादिलक्षणविकारेभ्यश्च सः=परमात्मा परब्रह्म परेस्ति, गुणादिदोषान् नाम सत्वरजस्तमोहेतुकैः क्लेशादिदोषैरतीतः=रहितश्चास्ति, प्रकृतिसम्बन्धकर्मवासनादिलक्षणसर्वावरणरहितः, अखिलात्मा=सर्वान्तर्यामी, यद् भुवनान्तराले वर्तते तत्सर्वं तेनास्तृतम्=व्याप्तमस्ति, तदनेन परब्रह्मणः सविशेषत्वमेव सिद्धतीत्यर्थः ॥९॥ स च परमात्मा समस्तकल्याणगुणविशिष्टः, स्वकीयशक्तिलेशमात्रेण सकलभूतधारकः, स्वेच्छया च न तु कर्मणा मत्स्यादिविधविग्रहधारी, अत एव सकललोकहितकर्तेत्यर्थः ॥१०॥ तेजःपदार्थादिलक्षणगुणानां परमराशिः=समुद्रः, पराणाम्=लोकपालादिभ्योपि परः=उत्कृष्टः पूज्यो वा, यस्मिन् क्लेशादयोपि न सन्तीत्यर्थः । "अविद्यास्मिता-

---

क्योंकि मैं क्षर और अक्षर अर्थात् बद्धमुक्त सभी जीवों से श्रेष्ठ हूँ अत एव लोक और वेद मुझे 'पुरुषोत्तम' कहते हैं, इससे भी भेद सिद्ध ही है ॥८॥ इसके आगे श्रीविष्णुपुराण सविशेष ब्रह्म का वर्णन करता है, यह दिखलाते हैं—स सर्वेति, प्रधान नाम वाली सर्वभूत-प्रकृति की अपेक्षा महत् आदि विकारों से वह परमात्मा परे हैं, गुणादि दोष अर्थात् सत्वरज और तम से उत्पन्न होने वाले क्लेश आदि (दोषों) से रहित है। प्रकृति सम्बन्ध कर्मवासना रूप समस्त आवरण से रहित है। अखिलात्मा=सर्वान्तर्यामी है। जो भी भुवन मध्यवर्ती है, वह सब उससे व्याप्त है। इस प्रकार के वर्णन से परब्रह्म सविशेष ही सिद्ध होता है—इत्यर्थः ॥९॥ वह परमात्मा समस्त कल्याणकारी गुणों से युक्त है, अपनी शक्ति के लेशमात्र से सभी भूत (चराचर जगत्) को धारण करने वाला है, अपनी इच्छा से, न कि कर्मवश होकर, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन आदि विविध विग्रह धारण करता है और समस्त लोकों का हित करने वाला है—इत्यर्थः ॥१०॥ तेजः पदार्थ आदि रूप, गुणों का, परमराशि अर्थात् समुद्र परमात्मा है, श्रेष्ठ लोकपालों से भी उत्कृष्ट है उनका भी पूज्य है, जिसमें क्लेश आदि नहीं हैं, इत्यर्थः अविद्या अस्मिता राग-द्वेष-अभिनिवेश पाँच क्लेश हैं। क्लेश आदि में आदि से कर्मवासना
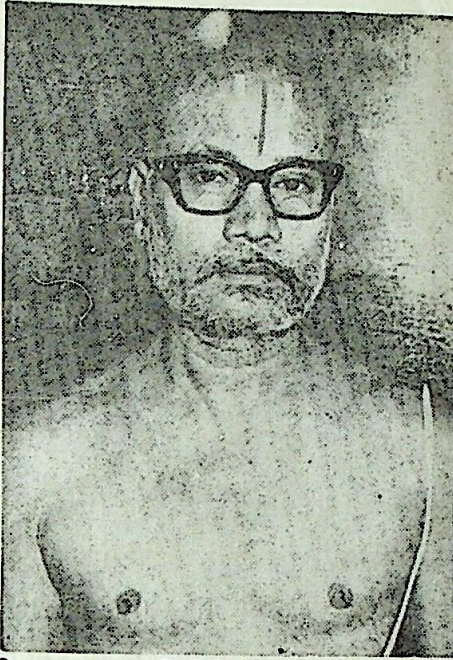
श्रीप्र० भ० स्वामीश्रीनिवासाचार्यजी महाराज

कांँची प्रतिवादि भयंकर मठाधीश श्रीमज्जगद्गुरु स्वामीजी महाराज का श्रीधाम वृन्दावन में शुभागमन

वृन्दावनधाम में काँची प्रतिवादिभयंकर मठाधीश, श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य, अनन्तश्री विभूषितश्रीस्वामीश्रीनिवासाचार्यजी महाराज काँची दिनाङ्क २४-८-९३ को पधार रहे हैं। आप श्रीरंगनाथ मन्दिर परिसर में विराजेंगे आपका स्वागत श्रीरंगमन्दिर अपनी संहिता के अनुसार एक पीठाधीश की मर्यादानुसार करेगा। श्रीस्वामी जी के साथ उनके भगवान् और परिकर जन रहेंगे। आप दि० २-९-९३ तक वृन्दावन में विराजेंगे। आपके सान्निध्य में कई धार्मिक अनुष्ठान सम्पादित होंगे।

श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ का विशाल अयोजन

सांगली (महाराष्ट्र) निवासी श्री मधुसूदन श्रीवेंकटेश सारडा भ्रातृद्वय अपने वैंकुण्ठवासी पूज्य पिताश्री की पुण्यस्मृति में श्रीमदभागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ का आयोजन श्रीधाम वृन्दावन में श्रीपुरुषोत्तम मास में अपने पाँचसौ पारिवारिक सुहृद् जन, बन्धुबान्धव इष्ट मित्रों परिवार के साथ दि० २६-८-९३ से१-९-९३तक फोगला आश्रम वृन्दावन में आयोजित कर रहे हैं। कथाका समय प्रातः९से१२ सायं३से६है। व्यासपीठ को सुशोभित कर रहे हैं अ.भा. सन्त समिति के केन्द्रीय अध्यक्ष, अ० भा० श्रीवैष्णव सम्मेलन के प्रधानमन्त्री, अनन्तश्री समलंकृत कौशलेश पीठाधीश श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीवासुदेवाचार्यजी महाराज 'विद्याभास्कर' अयोध्या। आप भगवान् श्रीकृष्ण के पावन चरित्रों को अपनी मधुर परिष्कृत वाणी से प्रस्तुत कर समागत श्रोताओं को सुन्दर रस पान करा रहे हैं।

श्रीस्वामी वासुदेवाचार्यजी महाराज 'विद्याभास्कर'

कथा के यजमान श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ के शिष्य हैं अतः अपने आचार्यश्री के सानिध्य में इस विराट् अयोजन को सुदूर सांगली महाराष्ट्र से अपने ६०० सौ से भी अधिक प्रेमीजनों के साथ आकरपवित्र श्रीधामवृन्दावन में वराके आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। कर्ता कारयिता एवं श्रोत्रा सभी धन्य धन्य हो रहे हैं।

—सम्पादक

Reg. No. M. T. R. 200

अनन्त-सन्देश के उद्देश्य

सर्वसाधारण भगवत्प्रेमानुरागियों को प्रभु प्रेम-रसामृतपान कराकर मानव समाज को पूर्ण सुख शान्ति प्रदान करते हुए ईश्वरोन्मुख होने में उत्पन्न भ्रम, विवाद एवं परस्पर द्वेष को समूल नष्ट करना और भगवत्प्रेम के दिव्य आदेश को उपस्थित करना साथ ही पूज्य श्रीकाँची प्र० भ० अनन्त श्रीविभूषित श्रीस्वामी अनन्ताचार्यजी महाराज के सदुपदेशों का प्रचार-प्रसार व श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की वृद्धि इस मासिक-पत्र का उद्देश्य है।

वृन्दावन में अष्टोत्तर शत (१०८) श्रीमद् भागवत-सप्ताह परायण ज्ञानयज्ञ

समस्त धर्मपरायण सज्जनों को सूचित करते हुए परमहर्ष हो रहा है कि १०८ (एक सौ आठ) विद्वानों द्वारा श्रीमद् भागवत सप्ताह पारायण सम्वत् २०५० अधिक भाद्रपद कृष्णपक्ष पंचमी तदनुसार दि० ६-९-९३ से प्रारम्भ होकर अधिक भाद्रपद मास कृष्णपक्ष त्रयोदशी तदनुसार दि०१४-९-९३ तक बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ श्रीरंगमन्दिर, वृन्दावन में अनन्तश्रीविभूषित गोवर्धन पीठाधीश्वर श्रीस्वामी जी महाराज के सान्निध्य में सम्पन्न होने जा रहा है।

इस ज्ञान महायज्ञ में श्रीहरिदेवमन्दिर वृन्दावन के अध्यक्ष अनन्तश्रीविभूषित **श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीत्रिदण्डी देवनारायणाचार्य स्वामीजी महाराज व्यासपीठ पर** विराजकर श्रीमद्भागवत कथा पर अपनासारगर्भित प्रवचन करेंगे। धर्मप्राण सज्जन अपने परिकर सहित उपस्थित होकर भगवदीय कथा श्रवण से होने वाले आत्म लाभ को प्राप्त करें। निवेदक—पं० राम चरण शास्त्री

आचार्यपीठ में—श्रीमद्भागवत जयन्ती एवं श्रीराधा जन्म महोत्सव

प्रिया-प्रियतम की नित्यनिकुंज लीलास्थली सेवाकुंज समीपस्थ आचार्यपीठ में विगत वर्षों की भांति श्रीमद् भागवत जयन्ती एवं श्रीराधा जन्म महोत्सब का अष्ट-दिवसीय आयोजन विविध भव्य कार्यक्रमों के साथ दि० २३ सित० राधाष्टमी मे पूर्णिमा दि० ३० सित० पर्यन्त सम्पन्न होने जा रहा है। आचार्य पीठाधिपति भागवतभूषण स्वामी किशोरीरमणाचार्य जी के संयोजन में होने वाले इस आयोजन में विविध कार्यक्रम सम्पन्न होंगे।

महोत्सव का समापन विराट विद्वत् सन्त सम्मेलन के साथ दि० ३० सित० को होगा। इस सम्मेलन को ज० गु० रा० अनन्तश्रीविभूषित स्वामी वासुदेवाचार्य जी महाराज "विद्याभास्कर" विशिष्ट अतिथि स्वरूप विराजकर सुशोभित करेंगे। साथ ही समागत ऐसे सन्त-मनीषियोंके प्रवचन, पूजन, वन्दन का सौभाग्य भी प्राप्त हो सकेगा। अतः श्रद्धालु महानुभाव ऐसे भव्य समारोह में भाग लेकर पुण्य अर्जित कर महोत्सव की शोभावृद्धि करें। प्रेषक—आचार्य मारुतिलाल 'वागीश'

इस पत्र के व्यवस्थापक एवं मालिक श्रीवेंकटेश देवस्थान ८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई—२ ने सम्पादक पं० श्रीकेशवदेव शास्त्री द्वारा श्रीरंगनाथ प्रेस, रंगजी का पश्चिम कटरा,वृन्दावन से छपवाकर प्रकाशित किया।